प्रस्तावना ।

महाराज रामचन्द्रजीका यशस्वी नाम कौन नहीं जानता। वे किसके पूज्य आराध्य देव नहीं हैं। भारतका बच्चा २ उन के नामसे परिचित है। प्रत्येक भारतवासीके घरमें उनकी नित्यशः पूजा वन्दना की जाती है, उनके अलौकिक गुणों और उपकारोंसे समस्त भारतभूमि गूंज रही है। यद्यपि उनको हजारों वर्ष होगए, परन्तु आजतक उनकी विमल कीर्ति उसी प्रकार विस्तृत है। उन्हींकी साध्वी स्त्री सती सीताजी (जानकीजी) का यह संक्षिप्त चरित्र है।

प्रिय बहनो ! सीताजीका चरित केवल एक मनोरंजक कथा वा उपन्यास ही नहीं है किंतु नीति और शिक्षाका एक भंडार है। उनके चरितकी एक एक घटना उपदेशसे भरपूर है। उन्होंने एक तेजस्वी पराक्रमी राजाकी पुत्री और एक प्रतापी लोकप्रिय राजाकी पुत्रवधू होकर वे कार्य किए कि जिनके कारण हिन्दू मात्र उनको अम्बे, माते कहकर पुकारता है। संसारमें जितने उत्तम गुण हैं वे सब मानो विधाताने उनमेंही कूट २ कर भरदिए थे। स्त्रियोंमें सबसे उच्चासन सीताजीका है। सीताजीने मानो जन्म लेकर संसारको आदर्श स्त्रीका स्वरूप बता दिया। स्त्रियोंमें जिन २ गुणोंकी आवश्यकता है उन सबकी परिपूर्णता सीताजीमें थी। यद्यपि योरप

आदि देशोंमें अनेक स्त्रियां हुई, परंतु कोई भी सीताजीकी समानता नहीं करसकी। सीताजीने भारतवर्षमें जन्म लेकर भारतवर्षके नाम और गौरवको संसारके इतिहासमें सदैवके लिए अंकित कर दिया। जबतक इस पृथ्वी पर चन्द्र सूर्यका प्रकाश रहेगा, सीताजीके अलौकिक गुणोंके कारण समस्त विश्वमंडलमें भारत भूमिका मस्तक ऊंचा रहेगा।

सीताजीने अपने उदाहरणसे सम्पूर्ण जगतको बता दिया कि पतिव्रत धर्म इसे कहते हैं। जिस सुकुमारी जनकनन्दनीने कभी घरसे बाहर पैर भी न रक्खा था, जिसने कभी भूख प्यासकी वेदनाका नाम भी न सुना था-उसने पतिके साथ जंगलोंमें अनेक कष्टोंको सहर्ष सहन किया। कई कई दिन तक बिना खाए पीए रहना गवार किया, परंतु पतिसेवासे क्षणमात्रके लिए भी मुँह न मोड़ा। पति देवका मुखसरोज देखते ही वह सब कष्टोंको भूल जाती थी और एक दम उसके शरीरमें आल्हाद हो आता था।

जब दुष्ट रावण सीताजीको हरकर लेगया और उनके शक्ति भर प्रयत्न करने पर भी कुछ फल न हुआ तो इस पतिव्रता देवीने आहार जलका त्याग कर दिया और दृढ़ प्रतिज्ञा करली कि जब तक श्रीरामको कुशल क्षेमके सामाचार न सुनूंगी, आहार जलका स्पर्श भी न करूंगी। रावणने कितना समझाया, कितना रिझाया और कितना लोभ दिखाया, परंतु धन्य है, उस पतिव्रता साध्वीको कि जिसने आंख भी उठा

उसकी तरफ नहीं देखा और वे अकाट्य उत्तर दिए कि रावणका मुंह बंद होगया और वह अपनासा मुंह लेकर रहगया। फिर जब रामचन्द्रजीने लोकापवादके भयसे सीताजीको निर्जन वनमें निकाल दिया तब उन्हें अनेक घोर कष्टोंको सहन करना पड़ा, परंतु उन्होंने कभी स्वप्नमें भी रामचन्द्रजीको उलाहना नहीं दिया वे सदा उन्हींका स्मरण करती रहीं और यही कहती रहीं कि इसमें रामचन्द्रजीका कोई दोष नहीं है। यह सब मेरे अशुभ कर्मोंका फल है। मैंने पूर्व जन्ममें अवश्य कुछ बुरे काम किए हैं जिनके ये फल भोग रही हूं। पश्चात् जब लव, अंकुशका रामचन्द्रजीसे युद्ध हुआ तो श्रीरामने उनके शीलकी परीक्षा करनेके लिए उनको जलते हुए अग्नि कुंडमेंसे निकलनेका हुकुम दिया, तो वह शीलसुंदरी तत्काल आराध्य देवका स्मरण करके यह कहकर अग्निकुंडमें कूदपड़ी कि यदि मैंने स्वप्नमें भी रामचन्द्रजीको छोड़ कर और किसीका ध्यान किया हो, तो मैं इस अग्निमें भस्म होजाऊं। सीताजी साक्षात् शीलकी मूर्ति थीं। उनके अखंड शीलके प्रभावसे वह महान जाज्वल्यमान अग्निकुंड शीतल जलमय हो गया और देवताने आकर उनकी रक्षाकी।

बहनो! विचार करो, सीताजीको कितने कष्ट सहने पड़े, कितनी आपत्तियोंका सामना करना पड़ा, घर बार छूटा, मित्र सम्बन्धी छूटे, देश ग्राम छूटे, दूसरेकी कैदमें पडना पड़ा, तिस पर भी उन्होंने किस प्रकार पतिव्रत धर्मका पालन किया और

शीलकी रक्षाकी। वास्तवमें संसारमें स्त्रीके लिए शीलसे बढ़कर और कोई उत्तम वस्तु नहीं। शील ही स्त्रीका रूप है, शील ही आभूषण है और शीलही शृंगार है। शील ही गहना है। चाहे और सर्वस्व चलाजाय, परंतु यदि शील बच जाय तो कुछ भी गया नहीं समझना चहिए। यही अमूल्य शिक्षा सीताजीके जीवनसे मिलती है। जिस तरह सीताजीने सब सुखों पर धूल डालकर, पतिके साथ जंगल पहाड़ोंमें शेर, बाघ, स्याल प्रभृतिका सामना करते हुए कंकर पत्थरोंकी ठोकर खाकर कांटों पर चलना स्वीकार किया, इसी प्रकार आपका भी धर्म है कि आपत्ति आने पर भी पतिकी सेवासे विमुख न होओ। वह जिस दशामें हो उसीमें अपना सौभाग्य समझो। चाहे कुछ हो, प्राण रहें या जायँ, मरते २ शीलकी रक्षा करो। तथा पति चाहे कितनाही रुष्ट हा जाय, चाहे कितनाही दण्ड वह दे, परंतु कभी उसकी निंदा न करो। सदा इष्टदेवकी समान उसकी आराधना करो। अहर्निश उसीका स्मरण करती रहो। विश्वास रक्खो कि जो स्त्रियां पतिव्रत धर्मका पालन करती हैं, देव सदा उनकी रक्षा करते हैं।

एक बात ग्रहण करने योग्य है। सीताजीका स्वभाव बड़ा कोमल था। सदा उनके मुख मंडलसे प्रसन्नता झलकती थी। वे भूलकर भी क्रोध करना नहीं जानती थीं। इसी कारण सब कोई उनसे भगिनीके समान प्रेम करते थे। बहनो! आपको भी यह गुण अवश्य ग्रहण करना चाहिये। संसारमें

उन्हींकी प्रशंसा होती है जिसका स्वभाव नम्र होता है। अपने तो अपने, पराये भी उनसे निस्वार्थ प्रेम करने लग जाते हैं।

बहनो ! यह चरित हमने केवल आपके लाभार्थ लिखा है। इसे पढ़कर यदि आपने कुछ भी लाभ उठाया तो हम अपने परिश्रमको सफल समझेंगे और शीघ्र अन्य पतिव्रता देवियोंके चरित भी आपके सन्मुख उपस्थित करेंगे।

इस पुस्तकके संशोधनमें हमें अपने मित्र श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी बम्बई, तथा लाला भगवानदासजी जैन मालिक जैनप्रेस अहियागंज, लखनऊसे बहुत सहायता मिली है। अतएव हम दोनों महानुभावोंके असन्त आभारी हैं।

लखनऊ

१०-८-१४ दयाचन्द्र गोयलीय

सीता-चरित्र

पहला परिच्छेद।

भारतवर्षमें अनेक देश हैं। उन्हींमेंसे एक मैथिल देश है। यह प्राचीन कालसे अनेक ऐतिहासिक घटनाओंके कारण जगत्प्रसिद्ध है। आबाल वृद्ध सबही इसके नामसे परिचित हैं। इसमें ही मिथिलापुर नामका एक नगर था जो हर प्रकारकी धन धान्यादि सम्पदाओंसे भरपूर और प्रकृतिकी विलक्षण शोभाओंसे विभूषित था। यहां किसी समय विश्वविख्यात राजा जनक राज्य करते थे। उनके ऐश्वर्यकी कोई सीमा न थी। वे बड़े सत्यवादी, प्रतापी और प्रजाहितैषी थे। उनकी पट्टरानी श्रीमती विदेहा देवी भी रूप गुणमें सब प्रकारसे उनके

अनुरूप ही थीं। उनके अलौकिक गुणों और शील स्वभावके कारण प्रजा उन्हें माता पिता तुल्य मानती थी।

पूर्व पुण्यके उदयसे रानी विदेहाने गर्भ धारण किया। क्रम २ से नौ मास व्यतीत होने पर सर्वांग सुन्दर पुत्र पुत्री का जन्म हुआ, परन्तु दैव योगसे जन्मान्तरके एक वैरी दैत्यने अपना बदला लेनेके अभिप्रायसे पुत्रको उसी रात्रिमें हरण कर लिया। दैत्यको उसपर इतना क्रोध आया कि उसे आकाशसे पृथ्वी पर पटक कर अपने स्थानको चला गया। रथनूपुरका राजा चन्द्रगति, जो अपनी प्राणप्यारीसहित आकाशमें विचर रहा था, बालकको आकाशसे पृथ्वी पर गिरते देख तत्काल नीचे आया और बालकको उठाकर अपने घर लेगया। इस मनोज्ञ बालकको पाकर राजा, रानी दोनोंको अपार आनन्द हुआ। उन्होंने महान् उत्सव मनाया और उस देवोपनीत रत्नोंके कुण्डलकी किरणोंसे मण्डित पुत्रका नाम प्रभामंडल (भामंडल) रक्खा।

दूसरा परिच्छेद।

जब सवेरा हुआ और विदेहाने अपने प्राण प्यारे पुत्रको अपने पास न पाया तब उसके बदनमें सन्नाटा छा गया। ऊपरका दम ऊपर नीचेका नीचे रह गया था। थोड़ी देरमें होश आने पर वह गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने लगी और हाय! हाय! कर गगन मंडलको कंपाने

लगी। जनक महाराजने बहुत कुछ समझाया पर उस अब-लाका दुःख दूर न हुआ। राजाने पुत्रकी खोजमें चारों तरफ तेज घुड़सवारोंको दौड़ाया, अपने मित्र सम्बन्धी राजा महा-राजाओंको समाचार भिजवाया, पर कहीं भी पुत्रका पता न पाया। लाचार होकर शोकातुर दम्पति पुत्री पर ही संतोष करके बैठ रहे। उसीको लाड प्यारसे पालने लगे। थोड़ी ही दिनोंमें मनोहारिणी जानकीने अपनी बाललीलासे पुत्रका शोक भुला दिया। पुत्री क्या थी? मानों रूप लावण्यकी खानि थी। स्वर्गसे साक्षात् देवकन्या ही भूमंडल पर उतर आई। शिरसे लेकर नख तक उसका एक एक अंग अनुपम सौन्दर्यका एक आदर्श चित्र था। यह कमलनयनी मृगलोचनी कोम-लाङ्गिनी, लक्ष्मीस्वरूप कन्या शुक्लपक्षकी शशिकलाकी समान दिनों दिन बढ़ने लगी। क्रमशः इसने यौवनावस्थामें पग रक्खा। अब तो इसके अंग प्रत्यंगकी शोभा और भी बढ़गई। यह अपने रूप लावण्यसे कामदेवकी स्त्री रति और इन्द्राणीको भी लजाने लगी।

अब माता, पिताको विवाहकी चिंता हुई। वे रात दिन यही सोचा करते थे कि इसके योग्य कौनसा राजकुमार है। सोचते सोचते राजा जनकने विचार किया कि इस समय अयोध्याके राजा दशरथ मेरे सबसे बड़े मित्र हैं। उनके राम लक्ष्मण पुत्र हैं, जिनमें राम सर्व गुण सम्पन्न, बड़े साहसी शूर वीर हैं। उन्होंने अभी मुझे शत्रुओंके जीतनेमें बड़ी सहायता की

है। अतएव मैं उन्हींके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करूंगा। महाराजने अपना यह संकल्प अपनी रानी पर भी प्रकट कर दिया।

तीसरा परिच्छेद।

नारदजीका कौतूहल जगत्प्रसिद्ध है। कौतूहलही उनके जीवनकी विशेष वस्तु है। चाहे किसीका घर उजडे, चाहे बिगड़े, चाहे कोई सुखशय्या पर शयन करे, चाहे कोई वन वनकी राख छाने, पर उन्हें अपने कौतूहल से काम। कौतूहल वश ही उनके मनमें इच्छा हुई कि चलो ज़रा उस जनकनन्दिनी जानकीको तो देखें जिसे राजा जनकने रामचन्द्रजीको देनी की है। वह किन लक्षणोंसे मंडित है, कैसी सुन्दरी है।

जिस समय नारदजी सीताके महलमें पहुंचे, उस समय वह दर्पणमें अपना मुख देख रही थी। उसमें नारदजीकी भयंकर जटाका प्रतिबिम्ब देखकर वह भयभीत होकर घरके अन्दर घुसने लगी। नारदजी भी उसके पीछे चले, पर द्वारपालके रोकने पर पीछे हट गये। इस अनादरको सीताका किया हुआ समझ कर वे मनमें खेदखिन्न होते हुए कैलाश पर्वतकी ओर चल दिये।

वहां जाकर उन्होंने विचार किया कि इस पापिनी जनकसुताने मेरा घोर अपमान किया। मैं इससे अवश्य बदला

गा। यह दुष्टिनी मेरे आगे कहां बचेगी? यह जहां जहां जायगी, वहां ही कष्टोंमें डालकर इसके इस कृत्यका मजा चखाऊंगा। ऐसा विचार कर नारदजीने सीताका एक चित्र पट बनाया और उसे वे रथनूपुर उसके भाई भामंडलके पास लेगये। भामंडल यह नहीं जानता था कि यह मेरी बहनका चित्र है। चित्र बहुतही सुन्दर बना था। उसे देखकर साक्षात् सजीव सीताका भ्रम होता था। वह उसे देखतेही कामके बाणसे घायल होगया। किसका खाना, किसका पीना सब भूलगया। रात दिन सीताकी चाहमें उन्मत्त रहनेलगा।

उसकी यह दशा देखकर चन्द्रगति विद्याधरने धैर्य दिया और कहा—बेटा! क्यों विह्वल हो रहा है, विषादको दूर करदे तू विद्याधरोंकी अत्यन्त रूपवती कन्याओंको छोड़कर भूमिगोचरियोंसे सम्बन्ध करता है, यह हमारे कुल और जातिके लिये लज्जाकी बात है। अस्तु, यदि तेरे मनमें सीताही बसी है तो क्या चिन्ता है, अभी उसके पिताको बुलाकर सब ठीक किये देता हूं।

विद्याधर राजाने तत्काल अपने दूतको बुलाकर और सब हाल उसे अच्छी तरह समझाकर मिथिलापुरीकी ओर रवाना कर दिया। दूत वहां गया और अपनी विद्याके बलसे महाराज जनकको आकाश मार्गसे रथनूपुरमें ले आया। चन्द्रगतिने राजा जनकका बड़े आदर सत्कारसे स्वागत किया। दोनों एक दूसरेसे मिलकर बड़े आनन्दित हुए।

अवसर पाकर चन्द्रगतिने कहा कि मित्रवर! मैंने सुना है कि आपकी कन्या सीता सर्वगुणसम्पन्न, और सुन्दरी है। अतएव आप उसका मेरे पुत्र भामंडलके साथ सम्बन्ध कर दीजिए। आपको ऐसा वर मिलना कठिन है। जनकने उत्तर दिया,—हे विद्याधरपति! आपका कहना शिर माथे पर है, परन्तु मैंने उसे अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको देनी करदी है। इसपर विद्याधर अपनी प्रशंसा और भूमिगोचरियोंकी निन्दा करनेलगे, कि कहां हम विद्याधर और कहां वे रंक भूमिगोचरी। हे जनक! तुम्हारी बुद्धि कहां चली गई? कुछ तो विवेकसे कामलो। यह तुम्हारा बड़ा भाग्य है कि विद्याधरोंके साथ तुम्हारा सम्बंध होता है, पर जनकने एक न मानी। वे रामकी ही प्रशंसा करते रहे।

जब चन्द्रगतिने देखा कि जनक किसी तरह नहीं मानता तब उसने अपने विद्याधरोंसे सलाह करके जनकराजासे कहा कि तुम वृथा ही राम लक्ष्मणकी प्रशंसा करते हो, उनके बल पराक्रमको तुम जानते नहीं। इसलिए हम देवों द्वारा पूजनीय वज्रावर्त, और सागरावर्त दो धनुष देते हैं, यदि राम लक्ष्मण इनको चढ़ा देवें, तो हम उनकी शक्ति जानें। तब आप उन्हें अपनी कन्या खुशीसे दे दें, हम कुछ न कहेंगे, अन्यथा हम तुम्हारी कन्याको जबरदस्ती ले आवेंगे, और तुम देखते के देखतेही रह जाओगे। जनक महाराजने यह बात स्वीकार करली। वे धनुष और विद्याधरोंको लेकर मिथिलापुर चले आये।

जब महाराजने नगर प्रवेश किया तब अनेक मंगलाचार गाये गये। सब कोई भेट लेलेकर सन्मुख उपस्थित हुए।

विद्याधरोंने नगर बाहर आयुधशाला बनाई और वहां उन्होंने भयंकर धनुषोंको रखदिया।

राजा जनकने बात स्वीकार करही ली थी, परन्तु उन्हें अन्तरंगमें बड़ी चिन्ता हो रही थी। वे धनुषोंको देखकर भयसे कम्पित हो रहे थे।

चौथा परिच्छेद।

अब महाराज जनकने सभासद और मंत्रियोंको बुलाकर स्वयम्वर रचनाकी आज्ञा दी। बातकी बातमें राजकुमारीके स्वयम्वरकी बात सारे नगरमें फैलगई। सर्व साधारणकी उत्सुकता स्वयम्वर देखनेके लिए शनैः शनैः बढ़ने लगी। देश देशान्तरोंसे आये हुए राजा महाराजाओंसे सारा शहर भरगया, नगरके चारों ओर हजारों डेरे, तम्बू बातकी बातमें दिखलाई देने लगे। अयोध्याके महाराजा दशरथ भी अपने चारों राजकुमारों सहित वहाँ पधारे और स्वयम्वरके दिनकी प्रतीक्षा करने लगे।

आज स्वयम्वरका दिन है। जिधर देखो उधर ही झुंडके झुंड लोगोंके दिखाई देते हैं। निमंत्रित राजा महाराजा सज धजकर स्वयम्वर मण्डपकी ओर आरहे हैं। नगरकी सौभाग्य-

चती स्त्रियां अपने अपने कोठों पर चढ़ी फूलोंको वर्षा करती और नाना प्रकारके क्रीड़ा कौतुक कर रही हैं। कोई हँस रही हैं, कोई गारही है, कोई अपनी सहेलीसे बातें कर रही है। राजकुमारोंके रूप, रंग, अस्त्र, वस्त्र उनके आलोच्य विषय हो रहे हैं।

अब स्वयम्वरका समय आ गया। शंखध्वनिसे सारा मण्डल गूंज उठा। स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं, भांति भांतिके बाजे बजने लगे। बन्दीजन उच्चस्वरसे यशगान गाने लगे और जय जय शब्दका उच्चारण करने लगे। भारतके सभी निमंत्रित राजे महाराजे एक पंक्तिमें कुमारीके महलके सामने विराजमान थे। सभाके चारों ओर दर्शकोंकी अथाह भीड़ थी। कान पड़ा शब्द सुनाई न देता था। सभीकी दृष्टि जानकी पर लगी हुई थी। एक खोजा जो सबसे परिचित था, हाथमें एक बेंत लिये हुए इशारा कर करके कुमारीको हर एक राजकुमारका गुण सुनाता जाता था।

हे राजदुलारी, तुम्हारे पिताजीके बुलाये हुए भारतके सभी प्रधान प्रधान राजा इस स्वयम्वर सभामें पधारे हैं। ये अंग, बंग, कलिंग, कौशल, पांचाल, मगध, काशी, गांधार आदि देश देशोंके अधिपति तुम्हारे अनुपम सौंदर्यको सुनकर तुम्हारे पाणिग्रहणके इच्छुक होकर आये हैं। इनमेंसे जो कोई आयुध-शालामें रक्खे हुए वज्रावर्त, सागरावर्त, धनुषोंको चढ़ा देगा, वही तुम्हारा पति होगा।

जनकनंदिनीने सबकी ओर देखते हुए अपने मनमें विचार किया कि यद्यपि राजपुत्र तो सभी सुभग और सुन्दर हैं। परन्तु इन सबमें दशरथसुत रामचन्द्रजी ही शिरोमणि हैं। देखिये, भाग्यमें क्या बदा है? धनुष चढ़ालें तभी मनोकामना पूर्ण हो। सीता ज्यों ज्यों रामको देखती थी, उसके सारे शरीरमें रोमञ्च हो आता था। सबकी दृष्टि जानकी पर थी, पर जानकीकी दृष्टि केवल राम पर थी। वह उन्हें निर्निमेष दृष्टिसे टकटकी लगाये हुए देख रही थी।

जनक महाराजका इशारा पातेही सब राजा महाराजा खड़े होगये और आयुधशालाकी ओर जाने लगे। धनुषोंको देखतेही बड़े बड़े पराक्रमी पीछे हट गये। किसीका साहस नहीं हुआ जो उनको हाथ लगावे। किसी किसीने उद्योग भी किया, परन्तु उन्हें अपना मुंह लेकर पीछे हट जाना पड़ा। अन्तमें श्रीरामने वीरतासे आगे बढ़कर बातकी बातमें वज्रावर्तको तान दिया। लक्ष्मण भी अपना पराक्रम दिखलानेके लिये आगे बढ़े और उन्होंने दूसरे धनुष सागरावर्तको उठाकर खेंच लिया।

धनुष चढ़ातेही सीता हाथमें वरमाला लिए शीघ्रतासे आगे बढ़ी और उसने वह प्रफुल्ल मनसे अपने प्राणप्यारे श्रीरामके गलेमें डालदी। बस अब क्या था? सखियां मंगल गीत गाने लगीं, बाजे बजने लगे, पुष्पवृष्टि होने लगी, चारों ओरसे जय जय शब्द होने लगे और आकाशमें देवगण धन्य धन्य कहने लगे।

इस अपूर्व दृश्यको देखकर जनक, दशरथ तथा उनके सम्बन्धी बहुतही आनन्दित हुए। सीता रामका जोड़ा ऐसा मालूम होता था मानो चाँद और सूरज दोनों एकसाथ पृथ्वी पर उतर आये हैं।

विधि अनुसार विवाह संस्कार हुआ और दशरथ बड़े आनन्द मंगलके साथ पुत्रवधूसहित अयोध्याको रवाना हुए। जब यह शुभ संवाद अयोध्यावासियोंने सुना, तब वे हर्षके मारे अंगमें फूले न समाये। घर घर आनन्द मंगल होने लगे। बड़ो धूम धामसे नवीन वर वधूका स्वागत किया गया। इस समय प्रत्येकके हृदयमें रामकी वीरताका चित्र घूम रहा था।

पांचवां परिच्छेद।
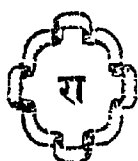
म जानकीका जोड़ा आदर्श पति पत्नीका जोड़ा था। उनका जीवन सच्चा धार्मिक जीवन था। जिन सुखोंके लिये विवाह किया जाता है वे सब उन्हें प्राप्त थे।

इन सुखोंको भोगते हुए इनका जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा, परन्तु जब भामंडलको यह समाचार पहुँचे तब उसका सारा शरीर कांपने लगा। वह ठंडी साँस भरकर कहने लगा—"इस हृदयविदारक घटनाने तो मेरी रही सही आशाओंकी एकदम इतिश्री करदी। हा! अब मैं कहां जाऊं? क्या करूं? वह मेरे मनको हरण करनेवाली, मेरे नेत्रोंमें वास

करनेवाली जानकी क्या सचमुच रामको मिलगई ? चाहे कुछ हो, प्राण रहें या जाएँ, पर मैं सीताको रामके भवनमेंसे निकाल कर लाऊंगा। ऐसा दृढ़ विचार करके भामंडलने अयोध्याका रास्ता लिया। वह अनेक वन, उपवन, नदी सरोवरोंको पार करता हुआ सीताकी चाहमें जा रहा था, परन्तु दैव ! तू प्रबल है, तेरे आगे पुरुपार्थ सिर भुकाता है कहां तो भामण्डल सीता-को अर्धांगिनी बनानेके लिए जा रहा था और कहां उसे रास्तेमें ही एक शहरके देखतेही जातिस्मरण हो आया और वह तत्काल विचारने लगा। रे आत्मन्, तू क्यों मूढ़ हुआ है, तेरी समझ पर क्या पत्थर पड़े हैं। अरे पापी, जिसकी धुनमें तू पागल हुआ वन वनकी राख छानता फिरता है, वह तो तेरी मांजाई वहिन है। इस प्रकार भामण्डल अपनेको धिक्कारता हुआ लौट आया।

राजा चन्द्रगतिने यह बात सुनते ही संसारको क्षणभंगुर जानकर त्याग दिया और मुनि महाराजके निकट जाकर दीक्षा लेली। इसी समयमें दैवयोगसे महाराज दशरथ भी पुत्रसहित मौजूद थे। मुनि महाराजका उपदेश सुनकर और अपने पूर्वभवोंका हाल जानकर सब गले लग लग मिले। सीता भाईको देखतेही प्रेमके आंसू बहाती हुई उसकी छातीसे चिपट गई। महाराज जनक और महारानी विदेहा दोनों अपने बिछुरे हुए लालको पाकर हर्षके मारे अंगमें फूले नहीं समाये।

छठा परिच्छेद ।

वकी महिमा अपरम्पार है। वह जो कुछ न करे थोड़ा है। सीताजीको अभी सुख चनसे रहते हुए कुछ देर न हुई थी कि एक नवीन घटना उपस्थित हो गई। एक दिन महाराज दशरथ संसारसे विरक्त होकर जिन दीक्षाके लिए उद्यमी होगये। "हाय! पति तो दीक्षालेते ही हैं, क्या पुत्र भी इस नव यौवन अवस्थामें दुर्द्धर तप करेगा? फिर मेरी कौन सुधि लेगा? मैं किसके आश्रय रहूंगी? ऐसा सोचकर महाराणी केकईने महाराजसे प्रार्थना की कि प्राणनाथ! आपको याद होगा, आपने मेरी युद्धस्थलकी चतुराईसे प्रसन्न होकर मनचाहा वर मांगनेके लिए वचन दिया था। सो अब कृपाकरके उस वचनको पूरा कर दीजियेगा। महाराज दशरथने सहर्ष उत्तर दिया, प्रिये, निश्चयसे मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, जो चाहो माँगो। केकईने नीची दृष्टि करके कहा कि राजगद्दी भरतको मिले।

यद्यपि यह वचन न्यायविरुद्ध और लोकविपरीत था कि बड़े पुत्रके होतेहुए राजगद्दी छोटेको मिले, परन्तु राजा दशरथने यह विचार करके कि "रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं पर वचन न जाई" भरतको राजतिलक देना स्वीकार करलिया। रामचन्द्रजी इस समाचारको सुनकर तनिक भी

दिलगीर न हुए। उल्टा, उन्होंने भरतको समझा बुझाकर राज्यभार संभालनेके लिए तैय्यार कर दिया। भरत पहलेसे ही भोग विलासोंसे उदासीन हो रहा था। अब तो उसकी उदासीनताकी सीमा न रही। वह बार बार अपनेको धिक्कारने लगा, परन्तु सबके और विशेषकर रामचन्द्रजीके आग्रहसे विवश हो उसे राज्यका भार लेनाही पड़ा।

श्रीरामचन्द्रजीने यह ही नहीं किया, किन्तु उन्होंने यह विचारकर कि यदि मैं यहीं अयोध्यामें रहूंगा तो मेरे रहते हुए लोग भरतकी आज्ञाका प्रतिपालन न करेंगे, उसका महत्त्व और ऐश्वर्य जगतमें विस्तरित न होगा। अयोध्यासे बाहर दक्षिण देशको जानेका दृढ़ संकल्प कर लिया और वे धनुष-बाण हाथमें लेकर चलनेको उद्यमी हो गए। यह समाचार सुनकर लक्ष्मण दौड़ा हुआ आया और भाईके साथ चलनेके लिये तैयार हो गया। रामचन्द्रजीने हजार समझाया पर उसने एक न मानी।

जब पतिगमनके हृदयविदारक समाचार जानकीको मिले तब उसकी जो दशा हुई, लेखनी द्वारा उसका प्रगट करना मनुष्योंकी शक्तिसे बाहर है। यह बात आबाल वृद्ध किसीसे छिपी नहीं कि संसारमें सच्चरित्रता और पवित्रतामें कोई भी स्त्री सीताकी समानता नहीं कर सकती। उसके शील और पतिव्रत धर्मकी देवता तक मुक्त कंठसे प्रशंसा करते थे। अपने आराध्यदेव प्राणनाथको बन जाते सुन कर वह एकदम अचेत

होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। अनेक शीतोपचार करने पर होशमें आई और पतिके संग चलनेके लिए खड़ी हो गई।

प्रेमके भरे हुए श्रीरामचन्द्रजी भी वहाँ आ पहुँचे और जानकीको छातीसे लगाकर कहने लगे, प्राणप्यारी! पूज्य पिताजीने भरतको राजगद्दी दी है, अतएव मैं कुछ कालके लिये दक्षिणकी ओर जाता हूँ। जब भरतका राज्य यहां निष्कंटक जम जायगा, तब लौट आऊँगा। इतने समय तक तुम यहीं सुखपूर्वक माताके पास रहो, कोई चिन्ता न करो, मैं बहुत शीघ्र तुमसे आकर मिलूँगा।

सीता—प्राणनाथ! आप क्या कहते हैं? मेरी समझमें कुछ नहीं आता। आप जंगलमें जायँ मैं सुखपूर्वक घर पर रहूं क्या यह सम्भव है? नाथ! सुख शब्दका प्रयोगही पतिके संग है। पतिके बिना यह रमणीय संसार श्मशान भूमिके समान प्रतीत होता है। आपके बिना मेरे लिए सारी पृथ्वी शून्य है। यह कदापि नहीं हो सकता कि आप जांय और मैं यहां रहूं। मैं आपके संग चलूंगी। इसमें ही मेरा सौभाग्य है। करुणाकर मुझपर दया करो।

राम—प्राणवल्लभे! मार्ग बड़ा कठिन है। तुमने कभी घरसे बाहर पैर भी नहीं रक्खा। तुम किस तरह रास्तेके कष्टोंको सहन करोगी। ठौर ठौर पर सिंह व्याघ्र मिलेंगे, तुम उन्हें कैसे देख सकोगी? तुमने ग्रीष्म और शीत ऋतुको जाना नहीं, तुम कैसे गर्मी, सर्दीको सहन करोगी। तुमने कभी रेशमी

मखमली फर्श परसे पैर नहीं उतारा, अब तुम किस तरह कठिन कंकर पत्थरोंमें चलोगी। पग पग पर पैरोंमें कांटे चुभेंगे, चलते चलते छाले पड़जावेंगे। प्रिये, तुम्हारा यह शरीर इस योग्य नहीं। मेरा कहा मानो घरपर रहो। दिन जाते देर नहीं लगती। मैं जल्द वापिस आजाऊँगा।

जानकी—प्राणप्यारे, आपके विना मुझे स्वप्नमें भी सुख नहीं। सारे सुख आपके साथ हैं, आप मेरी कोई चिंता न करें, आपके चरणकमलमें निवास करते हुए मेरे सारे दुःख सुखमें परिणत हो जायँगे। मैं रास्तेके कष्टोंको सहर्ष सहन कर सकूँगी, पर दयालुनाथ! आपके वियोगके असह्य दुःखको क्षण-भर भी सहन नहीं कर सकूंगी। आपके विना मेरा जीवन व्यर्थ है। नाथ! मुझपर दया करो, मुझे जीवन दान दे अपने साथ ले चलो।

राम—प्रिये मेरा कहा मान लो, घर पर रहो, इसीमें मेरा तुम्हारा दोनोंका कल्याण है। अन्यथा मेरी लोकमें निन्दा होगी। तुम व्यर्थ कष्ट उठाओगी और तुम्हें कष्ट सहते देखकर मेरा चित्त सदा व्याकुल रहेगा। यहाँ घर पर सास तुम्हें लाड़ प्यारसे रक्खेंगी।

सीता—स्वामिन्, मुझे दुःख मत दीजिये। मेरा हृदय फटा जाता है। आपके विना माता, पिता, भगिनी, भ्राता, सास, श्वसुर मेरा कोई शरण नहीं। प्राणाधार, मुझे इस संसारमें एक आप ही शरण हैं। क्या आप मुझे अशरण छोड़कर जा-

यँगे ? हृदयेश्वर, क्यों मुझे जीतेजी शोकसागरमें पटकते हो ? मैं सबकुछ सहलूँगी, पर आपका वियोग नहीं सह सकूँगी।

रामचन्द्र—प्यारी ! मैं फिर कहता हूं। जंगलके कष्ट तुमसे सहे न जायँगे। पैदल तुमसे चला न जायगा। फल फूल खानेको मिलेंगे। तुमारा स्वभाव अति मृदु है। तुम जंगल के निशाचरादिक देखकर भयभीत होजाओगी। हठको छोड़कर तनिक विचारसे काम लो। यहां तुमको स्वप्नमें भी कष्ट न होगा।

सीता—नाथ ! यह सब कुछ सच है। पर मैं इन कष्टों की कुछ भी परवा नहीं करती। जहां आप होंगे, वहां मुझे कोई कष्ट न होगा। मैं बार बार हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं। मुझपर दया करो। दयालु प्रभो, आपकी दया जगत् प्रसिद्ध है। फिर मेरे लिये क्यों कठोर हो रहे हो। क्या मुझसे नेह तोड़ दिया ? क्या आपको मुझसे प्रेम नहीं रहा ?

रामचन्द्रजीने सीताजीको बहुत कुछ समझाया, पर वह पतिव्रता अपने धर्मसे एक पग पीछे न हटी। वह जनकनन्दिनी जानकी जिसने पिताके घर एक पैर भी खाली भूमि पर न रक्खा था और पतिके घर धूप तक भी नहीं देखी थी, अब पति-के साथ वन चलनेके लिए खड़ी हैं। स्वर्ग समान भोग विला-सोंको जलांजली देनेके लिए तैयार है, पर पतिका संग नहीं छोड़ती। सुखमें सब कोई साथी हैं पर सीता दुखमें उपस्थित है। पतिही उसका रूप है, पतिही उसका भूषण है, पतिही

उसका धर्म है, पतिही उसका आराध्य देव है, यहां तक कि पतिही उसका सर्वस्व है। पतिके सुखमें सुख और दुखमें दुख समझना यही सच्चा पतिव्रत धर्म है।

अंतमें रामचन्द्रजीने लाचार होकर संग चलनेकी आज्ञा दे दी। अब तो सीता अंगमें फूली न समाई। दौड़ी हुई अपनी सासके पास आई और उनसे आज्ञा मांगने लगी।

कौशल्या रोने लगी और पुत्रवधूको छातीसे लगाकर कहने लगी। हे चन्द्रमुखे! क्या तू भी जाती है? अब इस अवधपुरी में कौन रहेगा? तुम्हें देखकर ही संतोष करती, पर हाय! अब तो जीतेजी मर चुकी। राजदुलारी! तुम्हारा यह सुन्दर शरीर जंगलके घोर दुख सहनेके योग्य नहीं है। प्राणप्यारी, तुम तो यहां रहो। हा देव! मेरी मृत्यु क्यों नहीं आजाती। मैं इनके वियोगमें किस तरह तड़प तड़प कर दिन काटूंगी।

सीता—माता इसमें किसीका दोष नहीं, यह हमारे पूर्व अशुभ कर्मोंका फल है। आप विषाद न करें। कर्म बलवान् है। किसीका टाला टलता नहीं। अब मुझे आशीर्वाद दीजिये, यदि जीवित रही, तो फिर आन मिलूंगी।

यह कहकर सीता रोने लगी।

कौशल्या—लाड़ली क्यों रोती है? आजका दिन मुझे देखना था मेरे भाग्यमें यही बदा था। तुम सदा पतिकी सेवा करती रहना। पातिव्रत धर्म समझना। संसारमें वेही स्त्रियां यश पाती हैं, उन्हींकी जगत् प्रशंसा करता है जो पतिव्रत

धर्मका पालन करती हैं। तुम शीघ्र वनसे वापिस आना। मैं एक एक समय कष्टसे विताऊंगी। हा! अब मेरा घर शून्य होगया।

लक्ष्मण भी चलनेको तैयार हो गया। सारी अयोध्यामें शोक छागया। घर घरमें रो रुहाट मचगया। हाट बाज़ार बंद होगये। राम लक्ष्मण सीता तीनोंने माता पिता तथा कुटुम्बी जनोंसे आज्ञा लेकर नगरसे बाहर प्रस्थान किया। सारे नगरनिवासी गला फाड़ फाड़ कर रोने लगे। हज़ारों नरनारी उनके संग चलने लगे। राम मना करते थे। बड़ी कठनाईसे बहुत दूर जा कर उन्हें समझा बुझाकर विदा किया।

सातवां परिच्छेद।

कड़ी धूप पड़ रही है, ज़ोरसे लूयें चल रही हैं; भूमि अग्नि समान जलरही है। मुसाफ़िरोंके पैरोंमें छाले पड़गये हैं। घड़ियों पानी पीने पर भी प्यासके मारे व्याकुल होरहे हैं। ऐसी दशामें हमारी पतिव्रतादेवी जानकी असह्य कष्टोंको सहती हुई कँकरीले रास्तोंमें जारही है, परन्तु पतिके प्रेमवश उसके मुख कमल पर तनिक भी खेद नहीं, जब कभी शरीरसम्बन्धी अधिक कष्ट होता था, प्राणनाथकी ओर दृष्टि पसारतेही वह सब दुःख भूल जाती थी और उसके चेहरेसे पूर्ववत् प्रसन्नता झलकने लगती थी। इसी तरह तीनों धीरे
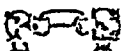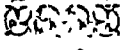
घोर चमते, रमणीक वनोंमें विश्राम लेते, जंगलके कन्दमूल फलोंको खाते रसभरी बातें करते, मार्गमें असहाय पुरुषोंकी सहायता करते और अपने बल पराक्रमसे उनके कष्ट निवारण करते हुए बहुत दूर निकल गये और नासिकके समीप दण्डक वनमें जा पहुंचे।

वहांका जल वायु अति उत्तम है। प्रकृतिकी छटा अद्भुत है। स्थान स्थान पर पानीके झरने बह रहे हैं। पक्षीगण मीठे स्वरसे कल नाद कर रहे हैं। ज्योंही यहां ठहर कर जानकीने तरह तरहके फलोंका मिष्ट स्वादिष्ट भोजन तैयार किया उसी समय भाग्यवश दो चारण ऋद्धिके धारी मुनि महाराज भी आगये। जानकीने बड़ी भक्तिसे उनको भोजन कराया।

इस ही समय एक पक्षी वृक्ष परसे मुनियोंके चरणोंमें आ पड़ा। मुनि महाराजोंने उसके पूर्व भवका हाल सुनाकर उसको श्रावकके व्रत धारण कराये और उसे रामचन्द्रजीके पास छोड़कर आप आकाशमार्गसे विहार कर गए।

राम, जानकी, इस पक्षीको जटायु कहकर पुकारने लगे। जानकी इसे बहुत ही प्यार करने लगी और हर समय इसे अपने पास रखने लगी।

———

आठवां परिच्छेद ।

एक दिन लक्ष्मण वनमें इधर उधर सैर करता फिर रहा था। अकस्मात् उसकी दृष्टि 'सूर्यहास्य' नामक प्रकाशमान खड्गपर पड़ी। इसे लंकाधिपति रावण का भानेज शम्बूक एक बांसके बीड़ेमें १२ वर्षसे सिद्ध कर रहा था। इसे देखते ही लक्ष्मणने उछलकर खड्गको ले लिया और परीक्षार्थ उसी बीड़े पर चला दिया जिससे सारा बीड़ा एक ही हाथमें साफ होगया और उसके साथ ही खडगके अभिलाषी शम्बूकका शिर भी धड़से जुदा होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। लक्ष्मण खड्गको लेकर अपने डेरे पर चला आया। इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा (सूर्पनखा) जो शम्बूकके लिए भोजन लेकर आई थी, अपने पुत्रका शिर कटा देखकर बेहोश होगई। बहुत देरमें सचेत होकर हाहाकार करती हुई घातककी खोजमें इधर उधर जंगलमें भटकने लगी। हाय पापी काल! तुझे मेरा ही पुत्र भक्षण करना था। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था? हा मेरे प्यारे लाल! तू अपनी माताको छोड़कर कहां चला गया? कौन दुष्ट तेरे खूनका प्यासा था?

इस प्रकार चन्द्रनखा विलाप करती फिर रही थी कि उसकी दृष्टि राम लक्ष्मण पर पड़ गई। इन्हें देखतेही वह तमाम शोक भूल गई और कामके बाणसे घायल हो गई। अवसर पाकर उसने इन दोनों भाईयोंसे अपनी मनोकामना पूर्ण करने-

की प्रार्थना की, परन्तु इन्होंने मौन धारण कर लिया और कोई भी उत्तर न दिया। यह देखकर और अपनी दाल गलती न देखकर चन्द्रनखा बुरा हाल बनाकर रोती पीटती अपने पति खरदूषणके पास गई और कहने लगी कि नाथ, आपके राज्यमें एक दुष्टने मेरे पुत्रको मारकर खड्ग रत्न ले लिया और उसी पापीने मुझे बलात्कार पकड़कर मेरे शीलको भंग करना चाहा, परन्तु पूर्व पुण्यके उदयसे और कुलदेवीके प्रसादसे मैं शील बचाकर यहां बच आई।

यह बात सुनते ही अलंकाधिपति खरदूषण क्रोधके मारे लाल ताता हो गया। उसने तत्काल ही रावणको पत्र लिखा और बहुत बड़ी सेना लेकर राम लक्ष्मण पर चढ़ गया।

चारों तरफसे सेनाको आती देखकर सीता रामचन्द्रजीसे कहने लगी—नाथ ! देखो यह सेना हमारी ओर आरही है, लक्ष्मण किसीको मारकर खड्ग ले आये हैं, उसके कारण अथवा उस दुष्टा व्यभिचारिणी स्त्रीकी कृपासे यह उपद्रव हुआ जान पड़ता है।

राम - (धनुष चढ़ाकर) प्यारी डरो मत, कोई चिंता नहीं। सेना आती है, तो आने दो।

लक्ष्मण—(तीर कमान हाथमें लेकर) पूज्य भ्राताजी आप सुखपूर्वक यहां रहें, मैं इन गीदड़ोंको अभी भगा आता हूं। आप सीताजीकी रक्षा करें। यदि आवश्यकता हुई, तो मैं आपको सिंहनाद करके बुला लूँगा।

रामचन्द्रजी सीताके पास बैठ गए। लक्ष्मण रणभूमिमें जा कर बड़ी शूरवीरतासे शत्रुका सामना करने लगा और ऐसी चतुराईसे लड़ा कि थोड़ी ही देरमें शत्रुकी सारी सेनाके पैर उखाड़ दिये। अपनी सेनाको पीछे हटते देखकर खरदूषणने रावणको सहायताके लिये बुला भेजा।

नौवां परिच्छेद।
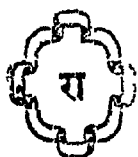
रावण समाचार पातेही खरदूषणकी मददके लिये पुष्पक विमानमें बैठकर चल पड़ा। परन्तु अभी रणभूमिमें आया भी न था कि रास्तेमें सीताके रूप लावण्यको देखकर मुग्ध हो गया। यह कोई देवकन्या है, या कामदेवकी स्त्री रति है, या शिवकी अर्धांगिनी पार्वती है। ऐसी सुन्दर नवयौवनवती स्त्री तो न कभी हुई, न कभी होगी। इसके विना मेरा जीतव्य निरर्थक है। इस तरह वह तरह २ के ऐसे विचार करने लगा। अब रावणको लोक परलोककी कोई चिन्ता नहीं, पुण्य पापका विचार नहीं, "युद्धमें जाना है" इसका भी ख्याल नहीं। अब तो एक मात्र सीता उसके मनमें बसी है, उसीके प्रेममें वह अंधा हो रहा है और उसीके हरण करनेका उपाय सोच रहा है।

रावण साधारण पुरुष न था। वह बड़ा ज्ञानी पंडित था। बड़ा पराक्रमी था। तीन खंडका अधिपति, महाशूर वीर तेजस्वी राजा था। परन्तु चित्तकी गति विचित्र है। लोकमें लोभ

समान कोई पाप नहीं और लोभमें भी परस्त्रीके समान कोई अनर्थ नहीं। परस्त्रीके कारण रावण जैसे पंडितकी भी बुद्धि बिगड़ गई। उसे एक कर्णपिशाचिनी विद्या सिद्ध थी। उसके बलसे उसने यह जान लिया कि लक्ष्मण आपत्तिके समय सिंह-नाद करनेको कह गया है। अब तो वह फूला अंग न समाया, उसका काम बन गया। उसने आपही लक्ष्मणके समान सिंह-नाद कर दिया। रामचन्द्रजीको "राम! राम!" की पुकार सुनाई दी।

इन शब्दोंको सुनते ही रामका चित्त व्याकुल हो गया। उन्होंने विचार किया कि भाई पर अवश्य कोई आपत्ति आई है और उसीने यह शब्द किया है। लाचार प्राणप्यारी सीताको जटायु पक्षीकी रक्षामें छोड़ कर आप भाईकी मददके लिये युद्ध-स्थलमें जा पहुँचे।

जिस समय अशुभ कर्मोंका उदय आता है, उस समय सारे कुलदेवी देवता सो जाते हैं। बैठे बिठाये आपत्तिका पहाड़ सिर पर आ पड़ता है। यह आपत्ति कौन कम थी कि राज्य विभूति-को छोड़कर, सुख सम्पत्तिको त्यागकर जनकनंदिनी गर्मी सर्दी-के कष्टोंको सहन करती, भयंकर वनोंमें पैदल पतिके संग फिरती थी। पर हा दैव! तू बड़ा दुष्ट है। तुझे इस कोमलांगी पर तनिक भी दया न आई। एक आपत्तिसे निकली नहीं कि इस बेचारीको दूसरीमें पटक दिया।

रामचन्द्रजीके जाते ही रावण उस स्थान पर आया, जहां

पतिव्रता सीता अपने प्राणनाथको याद कर रही थी। एक अपरिचित व्यक्तिको अपनी तरफ शीघ्रतासे आता देखकर सीता भयसे कांप गई और कहने लगी 'तुम कौन हो? क्यों मेरी तरफ बढ़े आ रहे हो? जरा दूर रहो, परस्त्रीके आंचलको मत छुओ'।

रावण—प्यारी! "कहां यह वन जहां भालू, बन्दर। कहां तू सुकुमारी अति सुन्दर।" प्रिये, यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं, यह जंगल सुनसान बियावान है। नाना दुष्ट भयंकर जीव यहां विचरते हैं। कोई तुम्हें क्षणमात्रमें भक्षण कर जायगा। चलो, मैं तुम्हें विमानमें बिठाकर लंकापुरी ले चलता हूं, जिसकी बनावट सजावटके सामने इन्द्रपुरी भी शरमाती है। मैं तीन खण्डका धनी रावण हूं। मेरे बल पराक्रमको देखकर काल भी भयभीत होता है। मेरे यहां चलो, वहां आनन्दपूर्वक जीवनके अकथनीय सुख भोगना। मुझे आशा है कि लंका देखकर तुम्हें रामचन्द्रका नाम भी याद न आयगा।

सीता—अरे पापी! कैसे शब्द मुखसे निकालता है: हट, दूर हो। परस्त्रीसे एकान्तमें बात करना ही पाप है। मुझे तेरे महलोंकी जरूरत नहीं। मेरे लिये वे ही महल हैं जहां मेरे प्राणपति राम विराजते हैं। याद रख जिस लंकाको तू इतनी बड़ाई करता है, एक रोज उसमें गीदड़ और कुत्ते रोएंगे।

वृथा अभिमान करता है अरे मतिमन्द तू बलका॥ टेक॥
अकेली जानकर मुझको वचन बोला है तू छलका। अरे हट दूर हो पापी पकड़ पल्ला न अंचलका॥

रावण—प्रिये, तुझे मेरे बलका पता नहीं है। मैं कुबेरका सौतीला भाई ही हूं। मेरे डरसे देवता तक थर थर कांपते हैं, मनुष्योंकी तो विसात ही क्या है। मेरे सामने तेरा पति तिनकेके बराबर भी नहीं। मेरी शक्ति, मेरी विभूति, मेरा ऐश्वर्य इन्द्रसे भी अधिक है। मेरे मंदोदरी आदि सहस्रों स्त्रियां हैं, मैं सबसे उच्चपद तुमको दूंगा। मेरा वचन मानो, मेरे साथ चलो।

सीता—अरे नीच कुबेरका भाई बनते और पराई स्त्रीको चुराते लज्जा नहीं आती। अरे राक्षस! इन्द्रकी इन्द्रानी सचीको चुराकर भले ही कोई जीता बच जाय पर रामकी भार्याको हर कर कोई बच नहीं सकता। बस अधिक मत बोल, मेरे हाथ न लगा। यदि तू अधिक सतायेगा तो अभी प्राण दे दूंगी। इतना कहकर सीता राम राम पुकार कर रोने लगी।

रावण उसको पकड़कर विमानमें बिठाने लगा। बेचारे जटायुने चोंचें मार मारकर उसे बहुत रोका और उसका वस्त्र भी फाड़ दिया, परन्तु रावण जैसे बलवान पुरुषके सामने अल्प-शक्ति धारी पक्षी क्या कर सकता था? रावणने जटायुको मार कर गिरा दिया और सीताको बलात्कार विमानमें बिठाकर लंकाकी ओर चल दिया।

———

दशवां परिच्छेद।

अब सीताके दुखका कोई पार नहीं। वह चिल्ला चिल्ला कर गगन मंडलको फाडे डालती है। उसके रुदनसे जंगलके पशु पत्ती भी स्तम्भित रह जाते हैं। हाय राम ! हाय राम !! यही शब्द उसके मुखसे बार २ निकलते हैं। हा जगदीश ! मुझपर यह कौनसी विपत्ति आई। मुझ अबलापर यह क्या दुख डाल दिया, मैं किस तरह सहन करूं। प्राणनाथ ! आप कहां हैं ? शूर वीर देवर लक्ष्मण ! तुम्हारी शक्ति कहां गई ? तुम्हारा बल पराक्रम कहां है ? हा भाई भामंडल क्या तू भी इस समय अपनी बहिनकी सहायता नहीं कर सकता। कुलदेवी ! क्या तू भी रूठ गई। भगवन् ! मैं ने ऐसा कौन सा अपराध किया है ?

रावण—हे देवि, मैं तेरी सोहनी सूरत और मनोमोहिनी मूरतको देखकर प्रेमवश विह्वल हुआ जाता हूं। यद्यपि तेरा सुन्दर मुख क्रोधसे लाल हो रहा है तथापि वह मुझे प्राणोंसे भी प्यारा मालूम होता है। प्यारी ! जिन नेत्रोंने मुझे घायल किया है, उनसे तनिक तो मेरी ओर प्रेम दृष्टिसे निहार, जिससे मेरे तड़फते हुए दिलको कुछ तो शांति प्राप्त हो।

सीता—अरे दुराचारी, नराधम ! तुझे शर्म नहीं आती ? तेरे अन्तःपुरमें सहस्रों रूपवती स्त्रियां होते हुए भी विषय वासना के वश तू परस्त्रीको विकार भावसे देखता है, और मुझ अबला-

के शील भंग करनेके लिये उतारू हुआ है ? क्या तुझ जसे भूपतिको ऐसा घोर अन्याय करना उचित है ? याद रख, इसका फल बहुत बुरा होगा।

रावण—प्यारी ! जो होगा सो हो रहेगा, इसकी कुछ चिंता नहीं। तेरे लिए मैं प्राण तक देनेको तैय्यार हूं।

सीता—धिक्कार है तुझ जैसे राक्षसी नीच पुरुषको। बस, मेरे हाथ न लगा और अधिक बातें न बना। मैं कोई ओछी स्त्री नहीं हूं जो तेरी चिकनी चुपड़ी बातोंमें आकर अपने शीलको गवां दूं। मैं प्राणोंको मुट्ठीमें दबाये बैठी हूं। तूने

सुधारलें।

प्रेसकी गलतीके कारण पृष्ठ संख्या २६ के आगे गलत छप गई है, पाठक सुधारलें।

हम क्षत्री हैं। क्षत्रियोंका यही धर्म है। इसके लिए शोक करना व्यर्थ है।

रावण—वल्लभे, इसका तो मुझे कोई शोक नहीं पर मुझे शोक अपना है। मेरी जानके लाले पड रहे हैं। प्रिये ! तेरे समान जगतमें मेरा कोई मित्र नहीं। मुझे विश्वास है कि तू मेरा जीते जी साथ देगी। यदि तू मेरा जीवन चाहती है, तो सीताको मुझपर मोहित कर, नहीं तो अभी प्राण तजे देता हूं।

मन्दोदरी--नाथ! यह सीताका अभाग्य है कि आप जैसे शूरवीर महाराजाधिराज उससे प्रार्थना करें और वह स्वीकार न करे। पर यह क्या आवश्यक है कि वह स्वीकार ही करे, यदि समझानेसे न माने तो बलको उपयोगमें लाइये और अपनी मनोकामना पूर्ण कीजिए।

रावण—प्यारी, यही तो आपत्ति है। नहीं, अबतक क्या था। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि कोई भी परस्त्री जब तक वह स्वयं मुझे न चाहेगी, मैं उससे जबरदस्ती कदापि न करूंगा। इससे विवश हूं। मेरी प्यारी, अब तू ही कोई उपाय कर, जिससे सीता मुझको चाहने लगे।

यह सुनकर मन्दोदरी सीताके पास बगीचेमें गई। और कहने लगी, हे बहिन, तुम उदास क्यों हो रही हो? तुम्हें क्या दुःख है? ऐसे सुन्दर रमणीय स्थानमें तो प्रसन्न चित्त रहना चाहिए।

सीता—बहिन, पापी रावण मेरा धर्म लेने पर उतारू हुआ है। मैं कोई ऐसा उपाय सोच रही हूं जिससे उस दुष्ट अन्यायीके हाथसे बचूं।

मन्दोदरी—अहा, हा! महाराजा रावण और उसके प्रति ये शब्द! प्यारी बहिन, अपनी जिह्वाको रोक। अभी कोई सुन लेगा, तो मेरी तुम्हारी दोनोंकी आपत्ति आ जायगी। बहिन, तू क्या कहती है? धन्य है वह नारी जिसका रावण जैसा

सर्वगुणसम्पन्न पति हो। मुझको आश्चर्य है कि तू राम जसे निर्जन वनके निवासी, निधन शक्तिहीन भूमिगोचरी, भिखारीका ख्याल दिलसे न निकाल कर तीन खण्डके अधिपति विद्याधरोंके स्वामी, अनेक विद्याओंके पारगामी, पराक्रमी महाराजा रावणके साथ जीवनके सुखोंको नहीं भोगती।

सीता—(नेत्रोंमें आंसू लाकर) हाय! हम अभागोंका कोई शरण नहीं। आशा थी कि मन्दोदरी जैसी पतिव्रता शीलवती स्त्री कुछ अवश्य सहायता करेगी; परंतु हा! जब अशुभ कर्मोंका उदय आता है, बनते काम भी विगड़ जाते हैं। मित्र शत्रु होजाते हैं। भाई बन्धु बिगाने हो जाते हैं। बहिन मन्दोदरी, इसका तो मुझे कोई ख्याल नहीं कि तुम रावणकी तरफदारी और मेरा विरोध करती हो, शोक तो इस बातका है कि तुम जैसी पतिव्रता स्त्री ऐसे घृणित शब्द अपने मुखसे निकालती हो! क्या कोई पतिव्रता ऐसा निंद्य कार्य कर सकती है? मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूं कि चाहे प्राण जाते रहें, शरीरके टुकड़े टुकड़े उड़ जांय, कितनी ही आपत्तियां सहनी पड़ें, परन्तु परपुरुषकी ओर कभी देखूंगी भी नहीं और जब तक राम लक्ष्मणकी कुशलताका समाचार न सुनलूंगी, अन्न जलका स्पर्श भी न करूंगी। ये बातें हो ही रहीं थीं कि रावण भी वहां आगया और कहने लगा—देवी! मैं कब तक तेरे लिये ठहरूंगा। यदि तू नहीं मानती तो याद रख, तेरे लिये अच्छा न होगा।
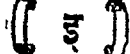
सीता—बस अधिक मत बोल, मुझे यह पसंद नहीं। मैं

मरनेसे नहीं डरती। यदि तू अधिक पांव फैलायगा, तो अभी गला घोट कर मरजाऊंगी।

भजन।

अरे रावण तू धमकी दिखावे किसे, मुझे मरनेका खौफो खतर ही नहीं। मुझे मारेगा क्या अपनी खैर मना, तुझे होनी की अपनी खबर ही नहीं॥ अरे०॥ क्या तू सोनेकी लंकाका मान करे मेरे आगे वह मिट्टीका घर भी नहीं। मेरे मनका सुमेरु हिलेगा नहीं, मेरे मनमें किसीका डर ही नहीं॥ अरे०॥ आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिलके सभी क्या मजाल जो शीलको मेरे हरें। तेरी हस्ती है क्या सिवा राम पिया, मेरी नजरोंमें कोई बशर ही नहीं॥ अरे०॥ तेरे घरमें हैं कितनी ये रानी बरीं, आया इसपर भी तुझको सबर ही नहीं। पर तिरिया पै तूने जो ध्यान दिया, क्या निगोदो नरकका खबर ही नहीं,॥ अरे०॥ मेरी चाह जो थी तेरे दिलमें बसी, क्यों न जीत स्वयंवर तू लाया यहीं। वह कौनसा देश बतावें मुझे, जहं पहुंची स्वयम्वरकी खबरी नहीं॥ अरे०॥ जो हुआ सो हुआ अब भी मान कही, मुझे राम पिया पै पठा दे सही। कहै 'न्यामत' न मानेगा तू जो कही, तेरे धड़ पर रहैगा शिर ही नहीं॥ अरे०॥ (न्यामतसिंह)

ग्यारहवां परिच्छेद।

इधर तो सीता रामके वियोगमें तड़फ रही है, रात दिन रोनेके सिवाय कोई काम नहीं, खाने पीनेका नाम नहीं, उधर राम लक्ष्मण सीताके वियोगमें विकल हो रहे हैं। रामने जिस समय सीताको कुटीमें न पाया, उनके होश हवाश जाते रहे, वे पछाड़ खाकर धमसे नीचे गिर पड़े और "हाय जानकी, प्राण प्राणकी" कहकर रोने लगे। कभी इधर देखते हैं, कभी उधर। यह सोचकर कि कहीं वृक्षों-में तो नहीं छिप गई, कहीं जंगल देखनेको तो नहीं चली गई, कभी मोह वश अबोल वृक्षोंसे पूछते हैं। कभी वनके पशु पक्षि-योंसे कहते हैं कि कहीं तुमने तो मेरी सीता नहीं देखी।

चौपाई।

हा गुणखान जानकी सीता। रूप शील व्रत नेम पुनीता॥
हे खग, हे मृग मधुकर श्रेनी। तुम देखो सीता मृगनैनी॥
सुन जानकी तोहि बिन आजू। मोहि न भावै एकहि काजू॥
प्रिया वेग किन प्रगटउ आई। केहि कारण नहिं देत दिखाई॥

(तुलसीदासजी)

इस तरहसे विलाप करते हुए जंगलमें फिरने लगे। लक्ष्मणने बहुत कुछ धैर्य्य दिया, परन्तु उनके विथित हृदयको कुछ भी शांति न हुई। प्राण प्यारीके विछोहका किसे दुख नहीं

होता और विशेष कर सीता जैसी पतिव्रता सुशीला स्त्रीका हरण तो वज्रपात समान समझना चाहिये।

यद्यपि जानकीको उसकी हटसे साथमें लाये थे, परन्तु अब तो इस निर्जन वनमें वह उनके जीवनका अवलम्ब थी। उसे देखकर ही वे सारे कष्टोंको भूल जाते थे और घरके समान सुखोंका अनुभव करते थे। जानकीके बिना उनका जीवन निरर्थक होगया। खाना पीना सब भूल गये। हाय जानकी, हाय जानकी! के सिवाय और कुछ उनके मुखसे न निकलता था। एक एक घड़ी कष्टसे बीतती थी।

कई दिनोंके बाद उनका किष्किन्धापुर नरेश सुग्रीव और पवनञ्जयसुत हनुमान आदिसे मिलाप हुआ और बहुत कुछ मित्रता होगई। उनसे ज्ञात हुआ कि सीताको लंकाधीश रावण हरकर लेगया है। अब तो कुछ जानमें जान आई और लक्ष्मणजीको ढाढ़स बंध गया। शत्रुका पता लगना ही कठिन था, अब पता लग गया, बस सीताको आई ही समझो। यह सुनकर सुग्रीवादि सब विद्याधर कांपने लगे और कहने लगे, आप ऐसे शब्द क्यों कहते हैं? रावण साधारण पुरुष नहीं है। हम सब उसके आधीन हैं। हृदयसे हम आपके दास हैं, पर बाहरसे रावणके विरुद्ध हमारा साहस नहीं होता।

लक्ष्मण—अरे भाई! इतने क्यों घबड़ा गये? क्या रावण कोई देवता है? जो कायर परस्त्रीको हर कर ले गया, वह मेरे सन्मुख खड़ा भी नहीं रह सकता।

विद्याधर—महाराज ! आप भी क्यों एक स्त्रीके लिए इतने विह्वल हो रहे हैं। ऐसा सीतामें क्या धरा है जिसके लिए जान बूझकर मौतका सामना किया जाय। आपकी एक ही सीता गई। हम आपको सीतासे बढ़ कर सैकड़ों सीता ला देंगे।

रामचन्द्र—भाई, तुम्हें इन बातोंसे क्या मतलब ? न मुझे सौ चाहिए न दो सौ। यदि वे हजारों भी हों, तो वे भी सीता-के सामने पैरकी धूल हैं। चाहे कुछ हो, जान जाय या रहे हम सीताको रावणके यहांसे लाकर ही छोड़ेंगे। आप हमारा साथ दें या न दें।

बहुत कुछ वाद विवादके बाद महाराज सुग्रीवने अपने आधीन राजा पवनजयके पुत्र वीर हनुमानको सीताजीके समा-चार लानेके लिए लंका जानेको कहा। हनुमान आज्ञा पाते ही लंकाकी ओर रवाना हो गया और बहुत जल्द पहुंचकर विभी-षणसे मिला और कहने लगा, कि कहिए सीताजीका क्या हाल है ?

विभीषण—क्या बतलाऊं, आज ११ दिन होते हैं उस बेचारीने अन्न जल आंखोंसे भी नहीं देखा।

हनुमान—तो फिर आप क्यों उस पतिव्रताके प्राण लिए डालते हैं। रावणको समझा बुझाकर क्यों उसे रामके पास नहीं भिजवा देते।

विभीषण—प्यारे हनुमान, मैं क्या करूं मैंने सौ बार रावणको समझाया, पर उसने मेरी एक न मानी और साफ

कह दिया कि जो कोई मुझसे सीताके विषयमें कहेगा, मैं उस-
से शत्रुवत् व्यवहार करूंगा। अब बतलाओ क्या कहूं और
क्या करूं?

बारहवां परिच्छेद।

अब हनुमान विभीषणसे वार्तालाप करके प्रमद
उद्यानमें पहुंचा जहां सती सीता पतिके वियोगमें
मलिन मुख बैठी थी। यद्यपि यह वन अनेक
शोभाओंसे मंडित था और साक्षात् नन्दन वन
जान पड़ता था, परन्तु महादेवीको यह जंगल श्मशान मालूम
होता था। उसके नेत्र आंसुओंसे भर रहे थे। सिरके केश
बिखर रहे थे। उसकी यह दशा देखकर हनुमानका हृदय भर
आया। उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि चाहे कुछ हो इस
पतिपरायणा सतीको इस दुःखरूपी समुद्रसे अवश्य निका-
लूंगा, इसका रामसे मिलाप कराऊंगा।

हनुमानने धीरेसे आगे बढ़कर गुप्त रूपसे श्रीरामकी अंगूठी
सीताके चरणकमलोंमें डाल दी। मुद्रिका देखतेही सीताका मुख-
कमल हर्षसे कुछ प्रफुल्लित होगया। पासमें जो स्त्री बैठी थी,
उसने उसी समय जाकर प्रसन्नताके समाचार रावणको कह
सुनाये। रावणने विचार किया कि शायद सीताकी कुछ सम-
झमें आगया है। अब मेरे कार्यकी अवश्य सिद्धि होगी। उसने
तत्काल ही मन्दोदरीको सारे अन्तःपुर सहित सीताके पास
भेजा।

मन्दोदरी—हे वाले, आज तू प्रसन्नचित्त है। तूने हम पर बड़ी कृपा की। अब तू लोकके स्वामी रावणको अंगीकार कर।

सीता—हे खेचरी, आज मुझे मेरे पतिका कुशल समाचार मिला है। वे आनन्दमें हैं, इसीलिये मुझे हर्ष हुआ है। मन्दोदरीने समझा कि इसने ११ दिनसे कुछ खाया पीया नहीं है, इस कारण इसे वातरोग होगया और यद्वा तद्वा बकती है। तब जानकी मुद्रिका लाने वालेसे कहने लगी कि भाई, मैं समुद्रके भीतर इस द्वीपके अगम्य वनमें पड़ी हूं। जो कोई उत्तम जीव मेरे प्राणनाथकी यह मुद्रिका लाया हो, वह प्रगट होकर साक्षात् दर्शन दे। तब हनुमानने आगे बढ़कर हाथ जोड़कर प्रणाम किया, अपना पूरा पूरा परिचय दिया और फिर श्रीरामका संदेशा सुनाकर विनय पूर्वक निवेदन किया कि हे सती शिरोमणि बहिन, श्रीराम स्वर्गके समान रमणीय स्थानमें विराजमान हैं, परन्तु तुम्हारे विना उन्हें वहां जरा भी विश्राम नहीं मिलता। सारे भोगोपभोगोंको तज कर मौन धारे तुम्हारा स्मरण कर रहे हैं। सदा तुम्हारा कथन करते हैं, और केवल तुम्हारे लिए ही प्राणोंको धारण कर रहे हैं।

यह सुनकर सीताको अत्यन्त दुःख हुआ। वह आंखोंमें आंसू भर कर कहने लगी भाई, मैं दुःख सागरमें पड़ी हूं, तुमसे प्राणनाथके समाचार सुनकर बहुत कुछ ढाढस बंध गया है, तुम बड़े उपकारी हो, मैं तुम्हें जन्मजन्मान्तरोंमें न भूलूंगी, पर भाई मेरे मनमें अनेक विकल्प उठते हैं, तुमने मेरे नाथको

कहां देखा ? तुम्हारा उनसे कैसे परिचय हुआ ? कदाचित् मेरे पति परलोकवासी होगये हों, अथवा सन्यासी होगये हों और तुम्हें यह मुद्रिका मिल गई हो, कृपा करके सारा हाल सुनाओ जिससे मुझे विश्वास हो जाय।

इसके उत्तरमें हनुमानने राम लक्ष्मणका सारा वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया जिससे सीताको पूर्ण विश्वास हो गया कि यह रामचन्द्रजीका ही दूत है। यह देखकर मन्दोदरीने हनुमानसे कहा बडे आश्चर्यकी बात है कि तू महाराज रावणका सम्बन्धी है, तो भी भूमिगोचरियोंका दूत बनकर आया है। क्या तुझे अपने स्वामीका कुछ भी विचार न आया ?

हनुमान—इसका तो आश्चर्य करती हो, पर तुम तो कहो कि राजा मयकी पुत्री और रावणकी पट्टरानी, होकर भी यहां दूती बनकर क्यों आई हो। जिस पतिके प्रसादसे तुमने देवांगनाओं के समान सुख भोगे, शोक कि उसे अकार्यमें स्वयं लगाती हो और ऐसे कार्यकी अनुमोदना करती हो। तुम तो सब बातोंमें प्रवीणा, परम बुद्धिमती थीं, पर न जाने क्यों तुम्हारी मति मारी गई कि देखते भालते अपने हाथों अपने लिये गढ़ा खोदती हो। तुम अर्धचक्रीकी महिषी पट्टरानी हो, पर अब मैं तुममें इस पदकी जरा भी योग्यता नहीं देखता।

हनुमानके वचन सुनकर मन्दोदरी क्रोधसे लाल ताती होकर कहने लगी अरे हनुमान, तेरा वाचालपना निरर्थक है। निर्लज्ज सुग्रीवादिक अपने स्वामी रावणको छोड़कर भूमिगोचरियोंके

सेवक बने हैं, जान पड़ता है कि इनकी मृत्यु निकट आई है। इनके समान मूढ़ और कृतघ्नी और कौन होगा। सीतासे मन्दोदरीके ये वचन सहन न हो सके। उसने तत्काल उत्तर दिया, अरी मंदबुद्धी मन्दोदरी, तू मेरे पतिको नहीं जानती, इसीलिए इतना अभिमान करती है। अरी किसीसे पूछ तो सही, कि मेरे राम कितने बली और पराक्रमी हैं। क्या किसीकी सामर्थ्य है कि उनके सन्मुख आ सके? क्या कोई नर भूमि पर उपजा है, जो बल और विद्यामें उनका सामना कर सके। क्या तूने कभी मेरे शूरवीर देवर लक्ष्मणका नाम नहीं सुना, जिनके दर्शनसे देवता तक कम्पित हो जाते हैं, मनुष्यों और विद्याधरोंकी तो बात ही क्या है। अधिक क्या कहूं मेरे पति अपने भाई लक्ष्मण सहित समुद्र तिरकर शीघ्र ही यहां आते हैं और तेरे पतिको मारकर तुझे विधवा बनाते हैं।

इन शब्दोंको सुनकर रावणकी सब रानियां सीताजीको मारनेके लिए दौड़ीं, पर हनुमानने बीचमें आकर सबको रोक दिया। तब वे सब मानभंगके कारण उदास होकर रावणके पास गईं। इधर हनुमानने सीताजीसे आहारके लिए प्रार्थनाकी और थोड़ा बहुत खिलाकर कहने लगे, बहन तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें श्रीरामके पास ले चलूं। पर आज्ञाकारिणी सीताने उत्तर दिया कि भाई मैं इस तरह नहीं जाती। कदाचित् प्राणनाथ यह कहने लगें कि तू बिना बुलाये क्यों आई? तुम जाकर उनसे सब हाल कहना और उनको धीरज बंधाना, तब

जैसी उनकी आज्ञा होगी मैं उनकी आज्ञाके विना एक पग भी आगे पीछे नहीं रक्खूंगी।

मन्दोदरीने रावणसे जाकर कहा महाराज पवनंजयका पुत्र हनुमान रामका दूत वनकर आया है और उसने ही सीताको वहका रक्खा है। रावणने तुरंत गारदको हुक्म दिया कि जाओ हनुमानको शीघ्र पकड़ लाओ। गारदने किसी तरहसे हनुमानको पकड़कर रावणके सामने उपस्थित कर दिया। रावण तथा समस्त कार्यकर्ता मंत्रीगण हनुमानको धिक्कारने लगे कि अरे दुष्ट पापी, तू वड़ा कृतघ्नी है। जिस स्वामीको पृथ्वीमें तूने प्रभुता प्राप्त की उसके प्रतिकूल होकर तू भूमिगोचरोंका दूत वना। तू पवनका पुत्र नहीं किसी औरका है। केशरी सिंह स्यालका आश्रय नहीं लेता। तू राजद्वारका दोषी है तुझे अवश्य मार डालना चाहिए।

हनुमान इन शब्दोंको सुनकर हंसकर कहने लगा कि कौन जाने किसकी मृत्यु निकट आई है। तेरे सहस्रों स्त्रियां होते हुए भी तुझे संतोष न हुआ। तूने पापी परस्त्री पर दृष्टि डाली। रावण तू रत्नस्रवा राजाके कुलक्षय पुत्र हुआ। तुझसे राक्षस वंशका क्षय हो जायगा। तेरे वंशमें वडे वडे मर्यादाके पालक राजा हुए पर न जाने तू कहांसे दुष्ट, कुलनाशक वंशविध्वंसक हुआ, ऐसा वचन कहकर फुर्तीसे अपने बंधन छुड़ाकर सबके देखते देखते ऊपरको उड़ गया और शीघ्रतासे श्रीराम और सुग्रीवके पास पहुंच कर उसने सीताका सारा हाल कह सुनाया।

तेरहवां परिच्छेद ।

सबकी सम्मतिसे यही निश्चय हुआ कि लंकाको शीघ्र प्रस्थान कर देना चाहिये। रावण जसे पापी दुष्टात्मा-को अवश्य दंड देना उचित है । भामंडलको भी बुला लिया और सुग्रीवादिक अनेक राजा महाराजा शूरवीर योद्धा श्रीराम लक्ष्मणके साथ लंकाको रवाना हुए मार्गमें अनेक राजाओंको परास्त करते हुए और अभिमानियोंका मान गलित करते हुए लंकामें जा पहुंचे। लक्ष्मणको आया देखकर रावणको विभीषणने बहुत कुछ समझाया और सीताको वापिस देनेके लिए शक्ति भर कहा, परंतु उसने एक न सुनी और क्रोधित होकर लंकासे निकल जानेका हुक्म दिया। विभीषण उसी समय अपनी सेनासहित रामसे आ मिला और इनका जी जानसे भक्त हो गया। रामचन्द्रजी भी विभीषणको पाकर बडे प्रसन्न हुए और अब उनको पूर्ण विश्वास हो गया कि अब मैं अवश्य लंकाको जीतूंगा।

रणभेरी बजते ही दोनों ओरकी सेना सज धजकर रणभूमिमें विधिपूर्वक खड़ी हो गई और इशारा होते ही बाणोंकी वर्षा होने लगी। दोनों पक्षके सुभट अपना अपना बल दिखलाने लगे। इधर लक्ष्मण, विभीषण उधर रावण, कुम्भकर्ण अपने अपने गुण दिखलाने लगे। दोनों दलमें घोर संग्राम होने लगा। श्रीरामने कुम्भकर्णको घेर लिया और नागफांससे बांध लिया

उधर इन्द्रजीतको लक्ष्मणने पकड़ लिया। रावण कोई तीर विभीषण पर छोड़नेको ही था कि इसने लक्ष्मणको तीर ताने सामने खड़ा देख लिया और इस जोरसे अपने शक्तिबाणको लक्ष्मण पर चलाया कि लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छा खाकर गिरपड़ा।
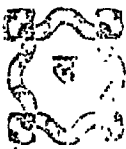
भाईको गिरा देखकर रामचन्द्रके होश हवाश जाते रहे और साहस टूट गया। वे उस दिन युद्धको बंद करके लक्ष्मणका सिर गोदमें रखकर धाड़ मार मार कर रोने लगे। हाय! लक्ष्मण हाय! भाई तू बोलता क्यों नहीं? तुझे यह कैसी निद्रा आई? तूने अब तक तो साथ दिया, अब अंत समय क्यों रूठ गया? भैया! उठ, आंखें खोल, देख तो, मैं कैसा तड़फ रहा हूं। मुझे अकेला यहां क्यों छोड़ दिया? भैया! अकेली तो लकड़ी भी नहीं जलती। तेरी मांने तुझे धरोहर रूप सौंपा था, अब मैं उसे जाकर क्या मुख दिखाऊंगा? भैया! देर न कर, उठ खड़ा हो, मैं क्षण भर भी तेरा वियोग नहीं सहन कर सकता। सीता बिछुड़ी तो क्या तू भी बिछुड़ गया? इस प्रकार श्रीराम विलाप करने लगे और हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! कहकर रोने लगे।

सीताजीको भी ये समाचार मिल गये। पहिले से ही उसकी दशा बुरी थी, अब तो उसपर साक्षात् एक आपत्तिका पहाड़ ही टूट पड़ा। हाय लक्ष्मण! क्या तुम जैसा शूर वीर बलवान् आजकी घड़ीके लिए ही पैदा हुआ था? प्यारे देवर, क्या तुमने मुझ पापिनीके लिए अपने प्राणों तकको अर्पण कर दिया?

सारी सेनामें कोलाहल मच गया। सबके नेत्रोंसे टप टप आंसू गिरने लगे।

कुछ देरके बाद शुभ कर्मोदयसे एक आदमी आता हुआ दिखलाई दिया। उसने हनुमान को देखते ही कहा कि तुम अयोध्या जाकर द्रोणमेघकी पुत्री विशल्याके स्नानका जल ले आओ। हनुमान तत्काल ही अयोध्याको रवाना होगया और वहांसे विशल्याको ही ले आया। उसके स्नानके जलके छींटे देनेसे लक्ष्मण खड़े होगये और होशमें आकर शत्रुसे लड़नेके लिए तयार होगये।

चौदहवां परिच्छेद।

लक्ष्मणके अच्छे होजानेका संवाद रावणको भी मालूम होगया। उसने और कोई उपाय न देखकर बहुरूपिणी विद्याको सिद्ध किया और युद्धमें जानेसे पहले वह एक बार फिर सीताके पास गया और बड़े प्रेमसे कहने लगा, हे देवी, यदि अब भी तुमको रामकी अभिलाषा है तो उसे मनसे निकाल दो। अब उसका पूर्ण होना असंभव है। मेरे साथ आनन्दपूर्वक जीवनके भोग भोगो और मेरी उभरती हुई इच्छाओंको पूर्ण करो। मैंने तुम्हारे प्रेममें अपने भाई बन्धुओं और मित्रोंसे भी नेह तोड़ दिया।

सीता—हे दशानन, यदि श्रीराम तेरे हाथसे मारे ही जांय, तो मारनेसे पहले कृपया इतना उनसे अवश्य कह देना कि

शोक ! तुम्हारी प्यारी सीता अन्त समयमें तुम्हारा दर्शन न कर सकी। अब तक तुम्हारे कारण प्राण टिके थे, पर अब तुम्हारे दर्शनोंकी पिपासा और वियोगके दुःखको अपने कोमल हृदय पर लिये हुये वह भी प्राण न्योछावर कर देगी। अब रावणको निश्चय होगया कि सीता मुझे कदापि नहीं चाहेगी। शोक !!! संसारमें कलंकका टीका मेरे माथे पर लग गया और मेरा कार्य भी न हुआ। हा ! मैंने अपने कुलको कलंकित किया, पूर्वजोंकी मर्यादाको भंग किया, भाई बन्धुओंको हाथसे खो दिया, मित्रोंको शत्रु बना लिया, सहस्रों शूर वीरोंका घात करा दिया, तो भी सीताने मेरी ओर पलक भी उठाकर नहीं देखा। निस्सन्देह सीता साध्वी और पतिव्रता देवी है। धिक्कार मुझको ! जो मैंने ऐसी पतिव्रता देवीके शील भंग करनेका विचार किया। न मुझे यह विचार होता, न यह युद्ध होता और न अपनी पराई जानोंका स्वाहा होता, परन्तु अब क्या होता है। पीछे भी नहीं हटा जाता। क्या करूं क्या न करूं। इधर खाई उधर कूआं। अस्तु, जो होगा सो हो रहेगा। ऐसा विचार कर मंदोदरीसे अन्तिम भेंट करनेके लिए गया और कहने लगा, आज न जाने युद्धसे बचकर आऊं या न आऊं, अतएव यह अन्तिम भेंट है। जीता रहा, तो फिर आ मिलूंगा।

मन्दोदरीसे विदा होकर अस्त्र शस्त्र धारण करके रावणने रणभूमिमें प्रवेश किया और बड़ी शूर वीरतासे युद्ध किया, परन्तु लक्ष्मणके चक्रसे कहां बच सकता था। तत्काल बेहोश

होकर भूमि पर गिर पड़ा और क्षणमात्रमें परलोकवासी होगया। रावणकी मृत्युसे विभीषणको अत्यन्त शोक हुआ। सारे रणवासमें प्रलयका दृश्य दिखलाई देने लगा। चारों ओर रोने चिल्लानेके शब्द सुनाई देने लगे। श्रीरामने भक्त विभीषणको धैर्य दिया और तमाम रानियोंको संसारकी असारता दिखलाकर शांत किया। कुम्भकर्ण, मेघनाद इत्यादि रामचन्द्रके बंदीगृह से मुक्त होकर संसारको क्षणभंगुर जानकर, भोगविलासोंको त्यागकर राजविभूतिको लात मारकर दीक्षित होगये।

अब श्रीराम शीघ्र वहां पहुंचे, जहां उनकी प्यारी अर्धांगिनी रावणकी कैदमें पड़ी हुई उनके दर्शनोंकी अभिलाषामें जीवनके श्वास पूरे कर रही थी। देखते ही दोनोंके नेत्रोंसे अश्रुजलकी अविरल धारा बहने लगी। सीता रामकी छातीसे चिपट गई और कहने लगी, हे तात, प्राणाधार, धन्य आपको, आपने दर्शन देकर मुझे प्राणदान दिया। स्वामिन्! मैं तो निराश हो गई थी और प्राणोंको अर्पण करनेके लिए तैयार बैठी थी। धन्य मेरा भाग्य, जो मुझे आपके दर्शन होगये। नाथ, मैंने पूर्व भवमें अवश्य ही कोई पाप किया था जिसका यह फल भोग रही हूं। आपके कहनेको न मानकर मैं हठ करके जंगलमें आई, मेरे कारण आपको कितने कष्ट हुए। महाराज, कहां अयोध्या और कहां यह समुद्र पार लंका। इस तरह बहुत देर तक दोनों वार्तालाप करते रहे। दोनों एक दूसरेसे मिलकर अपार आनंदित हुए। अनेक वनोपवनोंकी शोभा देखते हुए भगवानके मंदिरमें पहुंचे।

बडे भक्ति भावसे दोनोंने दर्शन पूजन किया। तदनन्तर विभीषणको राज देकर उन्होंने अयोध्याको प्रस्थान किया।

पन्द्रहवां परिच्छेद।

उनके अयोध्याके पहुंचनेपर बड़ा आनन्द मनाया गया। घर घरमें उत्सव होने लगे। बाजे बजने लगे। यों तो सारी अयोध्या, और रनवासको अथाह आनंद हुआ; किंतु कौशल्या और सुमित्रा जो चौदह वर्षसे आशा लगाये मार्ग देख रहीं थीं, अपने प्यारे आंखोंके तारे पुत्रों और पुत्रवधूको देखकर हर्षमें फूलीं न समाइं। वे बार बार सीताको गलेसे लगाती थीं। उसका मुख चूमती थीं और सहस्रों मोहरें उसपर न्योछावर करती थीं।

महाराज भरतने प्रतिज्ञानुसार दीक्षा ले ली और श्रीराम गद्दीपर बैठकर अकंटक राज्य करने लगे। इनके सुशासनके प्रतापसे सारा कौशल राज्य सुख और धनसे परिपूर्ण होगया।

कुछ दिन कुशलपूर्वक बीतनेपर सीताजीके गर्भचिह्न प्रगट हुए और उनको दो शुभ स्वप्न भी दिखलाई दिए। यह देखकर रामचन्द्रजी और रामजननी कौशल्याको बड़ा आनंद हुआ। सारा राज्यभवन उत्साहसे पूर्ण होगया। सब कोई आशा पूर्ण नेत्रोंसे सीताकी ओर देखने लगे, परन्तु हाय समय तू किसीको फलाफूला नहीं देख सकता, जब यह हर्ष समाचार सब साधारण

को ज्ञात हुए तो शत्रुओं और द्वेषियोंको अपने मनके फफोले फोड़नेका अवसर मिल गया। उन्होंने सीताजीकी पवित्रतामें कलंक लगाकर संदेह प्रगट किया और प्रत्येकके हृदयमें यह अंकित कर दिया कि यह कदापि सम्भव नहीं कि सीता जैसी रूपवती स्त्री रावणसे बची हो। अतएव कुछ लोग मिलकर श्रीरामचन्द्रके पास गये और भयसे कांपते हुए कहने लगे, महाराज, हम आपके राज्यमें पूर्णरूपसे सुखी हैं। ऐसा राज्य किसीने भी आजतक अयोध्यामें नहीं किया, पर शरणागत पालक, आपके राज्यमें व्यभिचार दिनों दिन बढता जाता है। जो चाहे जिसकी यौवन संपन्न स्त्रीको बलात्कार हर लेता है, धर्मकी कोई मर्यादा नहीं। सब कोई कहते हैं कि जब हमारे राजा ही सीताको ले आये, जो बहुत दिनों तक रावणके घरमें रही और सम्भव है कि उससे अछूती बची हो, तो फिर हमको क्या भय है। प्रजा राजाकी अनुयायी होती है। "यथा राजा तथा प्रजा" अतएव महाराज कोई ऐसा उपाय करो जिससे धर्मकी रक्षा हो। प्रजाका हितहो। आप लोकमें बड़े राजा हैं। यदि आप प्रजाको रक्षा न करेंगे तो फिर कौन करेगा। हे देव! आप मर्यादाके प्रवर्तक पुरुषोत्तम हो। यही अपवाद यदि आपके राज्यमें न होता तो आपका राज्य इन्द्रसे भी बढ़कर होता।

लोगोंके मुखसे सीताको कलंकित करनेवाले शब्द सुनकर महाराज रामचन्द्रके हृदय पर इतनी गहरी वेदना हुई कि उसका वर्णन नहीं हो सकता. उन्होंने बड़ी कठिनाईसे आपको सम्हाला,

वे आंखोंमें आंसू भरे हुए कहने लगे कि हा, कैसी भयंकर हृदय विदारक सर्वनाशकी बात सुनी है। इसकी अपेक्षा मेरी छाती पर वज्रघात क्यों न आ पड़ा। हा, मेरा यश रूपी कमलोंका वन अपयश रूपी अग्निसे जलने लगा। जिस सीताके निमित्त मैं ने विरहका कष्ट सहा, जिसके लिए मैंने समुद्र तिरकर रणसंग्राममें रावण जैसे रिपुको जीता, क्या वही जानकी अब मेरे कुलरूपी चन्द्रमाको मलिनकर रही है? क्या यह सम्भव है? कदापि नहीं, सीता निष्कलंक और पवित्र है। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। पर क्या करूं, कुछ समझमें नहीं आता। इस लोकापवादको सुना अनसुना करूं अथवा निरपराधिनी साध्वी सती सीताको परित्याग करूं? भगवन् मैं ने कौन अशुभ कर्म किये थे जिनका यह विषफल मुझे भोगना पड़ रहा है। एक आपत्तिसे निकलता नहीं कि दूसरीमें फंस जाता हूं। मेरी तरह कभी कोई संकटमें न पड़ा होगा।

इस तरह परिताप करके श्रीराम नीची दृष्टि किये सोचने लगे फिर लम्बी सांस भर कर कहने लगे, मैं इन्हीं पाप कर्मोंके लिये उत्पन्न हुआ था। मुझ जैसा पातकी नराधम इस लोकमें कौन होगा कि जानते बूझते भी सीता जैसी प्रियभाषिणी, निरपराधिनी, शुद्धाचारिणी, देवीको परित्याग करनेके लिए उतारू हुआ हूं। धिक्! राज्य विभूति और राज्यपद! जिसके कारण मैं पाषाण हृदय होकर सती सीताको कूपमें डालनेके लिए तयार होता हूं, हे वसुन्धरे! मैं तुझमें क्यों नहीं समा जाता। हे

वज्रपटल ! तुम मुझपर गिरकर क्यों मेरे टुकडे टुकडे नहीं कर डालते। हा !!! सीता तू मेरे साथ कुछ भी सुख न भोग सकी। तूने विपद्वनका चन्दन तरु समझकर आश्रय लिया था। अब मैं तुझसे इस जन्मके लिए विदा होता हूं। प्यारी, तेरा रक्षक पोषक श्रीजिनेन्द्र भगवानके सिवाय और कोई नहीं। संसारमें स्त्रीका रक्षक पति होता है, पर देवी तेरा पति तेरा शत्रु हो गया, उसका हृदय पाषाणका हो गया। उसकी आशा छोड़कर एक मात्र जिनेन्द्रदेवका स्मरण कर। इस प्रकार मन ही मन विलाप करके रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको बुलाया और कहा हे वत्स लक्ष्मण ! सीता इतने दिन रावणके घर रही और फिर मैंने उसे ग्रहण कर लिया, इस बातकी लोकमें निन्दा है, अतएव मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा करली है कि जानकीका परित्याग करूंगा। सब तरहसे प्रजा रंजन करना राजाका परम धर्म है। मैं अपने चिर पवित्र त्रैलोक्य पूज्य उज्ज्वल वंशको इस लोकापवादसे कलंकित न करूंगा। आशा है कि तुम भी मेरे इस कार्यमें सहायक हो जाओगे।

लक्ष्मण—भाई साहब आप क्या करते हैं। क्या किसीका साहस हो सकता है कि जो सती सीताके विषयमें ऐसे शब्द मुखसे निकाल सके ! मैं अभी गुप्त रीतिसे जांच करता हूं और उस दुष्टकी अभी जिह्वा निकाल लाता हूं। शोक और आश्चर्य है कि आपको भी मूर्ख लोगोंके कहने पर विश्वास आ गया।

रामचन्द्र—नहीं भाई, यह बात नहीं है, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि सीता निष्कलंक और पवित्र है। वह सच्ची पति-व्रता देवी है। उसके शीलमें दोष लगाना महा अनर्थ है। पर वत्स, क्या करूं? प्रजाका मुंह मैं बन्द नहीं कर सकता। प्रजाको विश्वास है कि पापाचारी रावणने अवश्य सीताके शील को भंग किया है। मैं उनके इस विश्वासको किसी तरह नहीं हटा सकता, यदि मैं राजा न होता, तो मैं इस निर्मूल लोक-निन्दाका निरादर करके निडर होकर अपना जीवन व्यतीत करता। परन्तु राजा होकर यदि मैं प्रजाको संतुष्ट न कर सका, तो मेरे जीवनसे क्या लाभ? मैं प्रजा रंजनके लिए सीता तो क्या चीज़ अपने प्राण तक त्यागनेको तैयार हूं। ऐसी दशा में सीताका त्यागना कोई बड़ी बात नहीं। मैंने निश्चय कर लिया है, तुम इस विषयमें और अधिक कहकर मेरे मनको दुखी न करो। जो कुछ होगा, वह अवश्य होकर रहेगा। बेचारी जनकनन्दनीको दुःख भोगनेके लिए ही विधाताने पैदा किया है।

लक्ष्मण—महाराज क्षमा कीजिए, सीता सती निर्दोष है, इसे न तजिएगा। यह जनक लाड़ली गर्भके भारसे पीड़ित अकेली कहां जायगी, किसकी शरण लेगी। दीनबन्धु! यद्यपि यह रावणके यहां रही और रावण तथा उसकी दूतियां इसके पास आईं, पर महाराज! देखनेमें क्या दोष है। भगवानके सामने चढ़ाया द्रव्य निर्माल्य है, परन्तु उसके देखनेमें दोष

नहीं। ग्रहण करनेमें दोष है। हे नाथ, मुझ पर प्रसन्न होकर सीता सतीको न तजो।

राम क्रोधमें आ गए और कहने लगे, बस लक्ष्मण मैं अधिक सुनना नहीं चाहता। मैंने निश्चय कर लिया है चाहे जो हो सीताको निर्जन वनमें अकेली छोड़ दो। चाहे मरे चाहे जीये मेरे देश अथवा नगरमें क्षणमात्र भी न रहने पावे। इससे सर्वत्र मेरी अपकीर्ति हो रही है।

यह कह कर रामचन्द्रजीने कृतान्तवक्र सेनापतिको बुलाया और उसे सब हाल समझाकर आज्ञा दी कि तुम सीताको ले जाओ और मार्गमें जिन मन्दिरों तथा निर्वाण भूमियोंके दर्शन कराकर सिंहनाद अटवीमें अकेली छोड़ आओ।

सेवकका काम सेवकाई है। तर्क वितर्क करना उसका काम नहीं। कृतान्तवक्र इन हृदय विदारक समाचारोंको सुनकर छाती दाबकर सीताजीके मन्दिरमें गया और कहने लगा कि हे माता, उठो रथमें चढ़ो, तुम्हारी चैत्यालयोंके दर्शन करनेकी वांछा है, सो पूर्ण करो। श्रीरामचन्द्रजीने आज्ञा दी है। सीता पंच-परमेष्ठीको स्मरणकर और प्राणनाथको परोक्षमें नमस्कार करके रथमें सवार हो गई। चढ़ते समय अनेक अपशकुन हुए, परन्तु जिनभक्तिमें अनुरागिनी सीता निश्चिन्त चित्त चली गई।

अनेक चैत्यालयोंके दर्शन करनेके पश्चात् अब सेनापति गंगाको पारकरके सिंहनाद अटवीमें पहुंचा। वहां पहुंचते ही सेनापतिने रथको थाम दिया और रोने लगा। उसके मुखसे

एक शब्द भी न निकल सका। उसकी यह दशा देखकर सीता कुछ देर तक यों ही कर्तव्य विमूढ़ सी हो रहीं। फिर कातर होकर कहने लगीं—"भाई, तू इतना व्याकुल क्यों हो रहा है? मैं इस समय तुझको बहुत घबराया हुआ देखती हूं। शीघ्र कहो, क्या बात है? मेरा हृदय फटा जाता है। आर्य पुत्रका तो कुछ अमंगल नहीं हुआ। शीघ्र कहो, विलम्ब न करो, मेरे प्राण निकले जाते हैं, इन्हें बचाओ।"

सीताजीको इस प्रकार व्याकुल देखकर सेनापतिने लाचार जैसे तैसे चित्तको कुछ कड़ाकरके बड़ी कठिनतासे कहा, "माता! क्या कहूं कहते मेरी छाती फटती है। आप इतने दिन रावण के घर रहीं, इस कारण नगर निवासी लोग आपके विषयमें संदेह कर रहे हैं। उन्हींके वचनोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने दया, स्नेह और ममताको छोड़कर अकीर्तिके भयसे आपको परित्याग किया है। लक्ष्मणजीने बहुत कुछ समझाया, पर उन्होंने अपनी हठ न छोड़ी। हे स्वामिनि अब तुमको एकमात्र धर्म ही शरण है। संसारमें कोई किसीका नहीं।"

यह वज्रपातके समान शब्द सुनते ही सीता मूर्च्छा खाकर जमीन पर गिर पड़ी। थोड़ी देरमें सचेत होकर गद्गद वाणी से कहने लगी, हे सेनापति एक तरफकी बात गुड़से भी मीठी होती है। यदि राम दोनों तरफसे परीक्षा करके कोई आज्ञा देते तो न्याय हो जाता, परन्तु उनकी इच्छा, वे प्रसन्न रहें, मुझे उनकी आज्ञा शिरोधार्य है और इसीमें मेरा सौभाग्य है।

सेनापति—माता, मैं निरापराध हूं, मुझे क्षमा करो, मैं पराधीन किंकर हूं। इस पराधीनताको धिक्कार है। मुझे आज्ञा दीजिए।

सीता—हां तुम जाओ, प्रसन्न रहो, परन्तु श्रीरामसे यह अवश्य कह देना कि "मेरे त्यागका कोई विषाद न करना, परम धैर्यका अवलम्बनकर सदा प्रजाकी रक्षा करना, परन्तु यह स्मरण रखना कि दुष्ट जन संसारमें किसीकी बढ़ती-को देखकर प्रसन्न नहीं होते, मेरी निंदा यदि की तो आपने मुझे त्याग दिया। अच्छा किया, पर यदि वे आपके धर्मकी निंदा करने लगें, तो धर्मको मेरे समान बिन परीक्षा किये न त्यागना। हे नाथ, मेरे अपराधोंको क्षमा करना। सदा धर्ममें तल्लीन रहना। जगत दुर्निवार है, जगतका मुख बन्द करनेको कौन समर्थ है? जिसके मुखमें जो आवे सो कहे। इसलिए जगतकी बात सुनकर योग्य अयोग्य जो हो सो कीजिएगा। दानसे जनोंको प्रसन्न रखना, विमल स्वभावसे मित्रोंको वश करना, चतुर्विधि संघकी सेवा करना, मन, वचन, कायसे शुभ कर्म उपार्जन करना, क्रोधको क्षमासे, मानको निगर्वतासे, माया-को निष्कपटसे, लोभको संतोषसे जीतना, आप स्वयं शास्त्रोंमें प्रवीण हो, मैं क्या कहूं, मैं केवल क्षमाकी प्रार्थी हूं। हे नाथ! क्षमा करो।"

यह कहकर सीता तृण पाषाण युक्त भूमिमें अचेत हो कर गिर पड़ी। कृतान्तवक्र उन्हें निर्जन वनमें अकेली पड़ी छोड़

कर अयोध्याकी ओर चल दिया। सीता उसके जानेके बहुत देर बाद मूर्च्छासे सचेत होकर यूथत्यक्त मृगीकी नाईं विलाप करने लगी। उनके रुदनके शब्दोंको सुनकर वनके पशु पक्षी भी स्तम्भित हो रहे। हाय, कमलनयन, राम, नरोत्तम मेरी रक्षा करो। मुझसे वचनालाप करो। आप महा गुणवन्त शान्तचित्त हो। आपका लेशमात्र भी दोष नहीं। आप तो पुरुषोत्तम हो। यह मेरे पूर्वोपार्जित कर्मोंका फल है। मैंने पूर्व जन्ममें अवश्य किसीका वियोग किया है, अथवा कोई घोर पाप किया है; उसीका यह फल भोग रही हूं। हाय, मैं महाराज जनककी पुत्री, बलभद्रकी पट्टरानी, स्वर्ग समान महलोंकी निवासिनी, हजारों सहेली मेरी सेवा करनेवाली, अब पापके उदयसे इस दुःख सागरमें कैसे रहूं। रत्नोंके मन्दिरमें अति रमणीय वस्त्रोंसे सुशोभित सुन्दर सेज पर शयन करनेवाली, अब इस वनमें अकेली कैसे रहूंगी। मैं मनोहर वीणा, बांसुरी मृदंगादिके मधुर शब्द निरन्तर सुना करती थी, अब इस भयंकर शब्दोंसे प्रतिध्वनित वनमें अकेली कैसे रहूंगी। मैं रामदेवकी पट्टरानी अपयशरूपी दावानलसे जलती हुई इस भयावने वनमें कंकरीली पृथ्वी पर कैसे शयन करूंगी। ऐसी अवस्थामें यदि मेरे प्राण न जांय, तो समझना चाहिये कि ये प्राण ही वज्रके हैं। क्या करूं, कहां जाऊं, किससे क्या कहूं। किसका आश्रय लूं; हाय! गुण समुद्र राम, मुझे क्यों छोड़ दी। हाय महाभक्त लक्ष्मण मेरी सहायता क्यों न की। हाय, पिता

जनक ! हाय माता विदेहा !! यह क्या हुआ। मुझे पैदा होते ही क्यों न मार डाली। हाय, विद्याधरोंके स्वामी भामंडल, मैं इस दुःखमें कैसे रहूं। तुमने भी मेरी सहायता न की। हाय वसुन्धरे ! तू क्यों फटकर अपनेमें मुझे समा नहीं लेती। हा काल तू कहां सो गया, मुझे भक्षण क्यों नहीं कर जाता। यह कहते कहते सीताजीके नेत्रोंसे अविरल अश्रुजलधारा बह निकली।

सोलहवां परिच्छेद।

दैवयोगसे इसी समय पुण्डरीकपुरका अधिपति राजा वज्रजंघ जो हाथी पकड़नेके निमित्त उस वनमें आया था, सीताजीके रुदनको सुनकर उसके पास आया और कहने लगा हे बहिन, तू कौन है ? इस निर्जन वनमें किस पाषाण हृदय मनुष्यने तुझे अकेली छोड़ी है। हे पुण्यरूपिणी, अपनी इस अवस्थाका कारण बतला, शोकको त्याग कर, धैर्य धारण कर। मुझसे भयभीत मत हो। मैं पुण्डरीकपुरका राजा वज्रजंघ हूं। तब सीताने कठिनाईसे शोकको दबाकर अपनी सारी कथा कह सुनाई। इसे सुनकर वज्रजंघका हृदय करुणासे भींग गया। उसने सीताको बहुत धैर्य दिया और उसे अपनी धर्म बहिन बनाकर पालकीमें बिठाकर बड़े आदर सत्कारसे पुण्डरीकपुर ले गया। राजपरिवारकी समस्त स्त्रियोंने सीताजीका यथेष्ट स्वागत किया।

वज्रजंघ तथा उसकी समस्त रानियां सीताजीकी निष्कपट हृदयसे सेवा करने लगीं और उसे भगिनीके समान प्रेम करने लगीं।

अव वह दिन भी आ गया कि नवां महीना पूर्ण हुआ और श्रावक शुक्ला पूर्णिमाके दिन श्रवण नक्षत्रमें पुत्रयुगलका जन्म हुआ। पुत्रोंके जन्मसे पुण्डरीकपुरीने स्वर्गपुरीका रूप धारण कर लिया। सकल प्रजा अति हर्षित हुई मानो नगरी नाच उठी। तरह तरहके बाजे बजने लगे और चारों ओरसे "चिरंजीव, चिरंजीव जय जय" शब्द सुनाई देने लगे। एकका नाम अनंग लवण और दूसरेका नाम मदनांकुश रखा गया। ये दोनों दोयजके चन्द्रमाके समान दिनोंदिन बढ़ने लगे और अपने मीठे मीठे तोतले शब्दोंसे माताके मनको मोहित करने लगे। माता इनको देखकर अपना सारा दुःख भूल गई। बालक बड़े हुए और विद्या पढ़नेके योग्य हुए। दैवयोगसे एक बड़े ज्ञानवान् क्षुल्लक वहां आ गये। उन्होंने कुमारोंको होनहार जानकर थोड़े ही दिनोंमें उन्हें ज्ञान विज्ञानमें निपुण कर दिया। दोनों भाई चन्द्र सूर्यके समान अपने बल और विद्याके प्रतापसे सारे जगतमें प्रसिद्ध हो गये। संसार भरमें किसीको भी सामर्थ्य न थी, जो इनके सामने आ सके। जिस किसीने जरा भी सिर उठाया कि उन्होंने तुरत उसे मारकर यमलोकका रास्ता दिखलाया। इसके बल पराक्रमके प्रभावसे राजा वज्रजंघ शान्ति पूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगे।

एक दिन दोनों कुमार वनक्रीड़ा करते फिर रहे थे कि नारदजी दिखलाई दिये। कुमारोंने नारदजीको मस्तक झुका कर प्रणाम किया। नारदजीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों भाई राम लक्ष्मणकी तरह फलो फूलो। कुमारोंने पूछा—"महाराज! राम लक्ष्मण कौन हैं? कहां रहते हैं? क्या उनकी राज्यविभूति हमसे ज्यादह है? नारदजीने आदिसे ले कर सीताजीके त्याग पर्यंतका सारा हाल कुमारोंको कह सुनाया।

अंकुश—निस्सन्देह राम लक्ष्मण बड़े पराक्रमी बलधारी हैं, पर उन्होंने मिथ्या लोकापवादके कारण सीताको त्याग दिया, यह अच्छा न किया।

लवण—महाराज यहांसे अयोध्या कितनी दूर है?

नारद—यहांसे ६४० कोस उत्तरकी ओर है। क्यों किस लिये पूछते हो?

लवण—हम राम लक्ष्मणके साथ लड़ेंगे और देखें कि उनका बल वीर्य कितना है।

कुमारोंने घर आकर राजा वज्रजंघसे कहा कि मामाजी, हम अयोध्या पर चढ़ेंगे। आप शीघ्र युद्धकी तैयारी कीजिए। यह सुनते ही सीता रुदन करने लगी और नारदजीसे कहने लगी महाराज! आज यह क्या स्वांग रचाया है। क्यों बठे बिठाये बाप बेटोंमें बजवा दी? मैं दुखिया बहुत दिनोंके शोकको ज्यों त्यों दाबे बैठी थी। न कुछ तुम्हारा बिगड़ेगा न इन

बाप बेटोंका। आपत्ति मुझ अबला पर आई; इधर कुवां उधर खाई। अब किसी तरह इस विरोधको रोको।

नारदजीने कहा—बहन, मैं ने तो कुछ नहीं किया। इन्होंने मुझे प्रणाम किया। मैं ने इन्हें आशिष दी कि तुम राम लक्ष्मण से हो, इन्होंने राम लक्ष्मणका वृत्तान्त पूछा, मैं ने आदिसे अंत तक सारा हाल कह सुनाया। अस्तु, तुम कोई चिंता न करो, अच्छा ही होगा।

लवण अंकुश माताको दुखी सुनकर उसके पास आये और कहने लगे-माता! तुम किस लिये उदास हो। शीघ्र कहो। हम जैसे शूरवीरोंकी माताको कायर न होना चाहिये। आपको तो हर्ष मानना चाहिये कि आपके सपूत आज इस योग्य हुए कि शत्रुओंका मान गलित करके उनका शिर नीचा करें।

सीता—बेटा, तुम्हारी वीरताका मुझे अभिमान है; परन्तु प्रेम भी तो दोनों ओरका है। युद्धमें किसीको हानि पहुंचे इसीका मुझे भय है। तुमसे प्यारे मुझे राम लक्ष्मण और उनसे प्यारे तुम हो। बस यही उदासीका कारण है।

कुमार—(आश्चर्यसे) माता, वे हमसे प्यारे कैसे हैं।

सीता—श्रीराम तुम्हारे पिता और लक्ष्मण तुम्हारे चाचा हैं। वे दोनों तुम्हारे पूज्य गुरुजन हैं। अतएव मैं तुमसे अधिक उनको समझती हूं। मुझे तुम्हारा इतना ख्याल नहीं जितना उनका है। वे भी बड़े शूरवीर बलवान् हैं। इस युद्धमें किसी न किसीका अवश्य पराजय होगा। मुझ अभागनीके भाग्यमें

शोक ही बढ़ा है। मेरा कहा मानो, तो जाकर पिताको प्रणाम करो। यही नीतिका मार्ग है।

कुमार—माता, ये कैसे हो सकता है? हम दीनताके वचन कैसे कहें? हम तुम्हारे पुत्र हैं। हम रणांगनमें जाकर अवश्य तुम्हारा बदला लेंगे। 'उन्होंने तुमको तजा' यह हमसे सहन नहीं हो सकता।

माता चुप हो गई, परन्तु मनमें अति खेदखिन्न होती रहीं। कुमार सज धज कर और एक बड़ी सेना लेकर अयोध्या पर चढ़ गये और वहां पहुंचकर उन्होंने जंगलमें डेरा डाल दिये।

सत्रहवां परिच्छेद।

राम लक्ष्मण भी किसी शत्रुको अपने राज्य पर चढ़ आया देखकर एक बड़ी भारी सेना लेकर प्रातःकाल रणभूमिमें आ डटे। रणभेरी बजते ही दोनों दलोंमें घोर संग्राम होने लगा, बाणोंकी वर्षा होने लगी, पैदल पैदलोंसे घुड़सवार घुड़सवारोंसे हाथीसवार हाथी सवारोंसे भिड़ गये। परन्तु न उनके बाण उन पर काम करते और न उनके बाण उन पर चलते थे। दोनों दल अटल खड़े रहे जिसे देख कर सबको बड़ा आश्चर्य हो रहा था। महारानी सीताजी भी आकाशमें विमानमें बैठी यह तमाशा देख रही थीं।

इतनेमें नारद मुनि आते दिखलाई दिये। उन्हें देखते ही

लक्ष्मणने प्रणाम करके कहा, महाराज ! आज तक मेरा वार कभी खाली नहीं गया। आंख मींचकर भी जहां तीर फेंका, जिगरको पार करता हुआ निकल गया, पर न जाने आज क्या होनहार है। सबके सब वार खाली जा रहे हैं।

नारद—लक्ष्मण, इसमें आश्चर्य क्या है। तुम जानते हो, ये कौन हैं? ये दोनों सती सीताके पुत्र हैं। जिस समय रामचन्द्रजीने निरपराधिनी सीताजीको घरसे निकाला था, ये ही दोनों सुत गर्भमें थे। प्रकृतिके नियमानुसार न तुम्हारा तीर इन पर चल सकता है और न इनका तुम पर। यह सुनते ही राम लक्ष्मणने हाथसे हथियार डाल दिये और सीताका स्मरण करके रोने लगे। फिर बड़ी शीघ्रतासे पुत्रोंके सन्मुख आये। अपने पूज्य पिता और काकाजीको अपनी ओर आते देखकर दोनों भाई रथसे उतर पड़े और हाथ जोड़कर रामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े। रामचन्द्रजीने अति स्नेह प्रेमसे उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया और अपनेको धिक्कारने लगे। हाय, मैंने तुम्हारी महा गुणवती, व्रतवती पतिव्रता माताको निरपराध वनमें तजकर महा अनर्थ किया। धिक्कार मुझको, मैंने तुम जैसे वीर पुत्रोंको घोर कष्ट दिया। पश्चात् दोनों भाइयोंने लक्ष्मणजीको प्रणाम किया और उन्होंने अनेक आशीर्वाद दिये।

यह दृश्य देखकर सीताजीको आकाशमें असीम आनंद हुआ और वे तत्काल ही पुण्डरीकपुर लौट गईं। भामंडल, सुग्रीव,

विभीषण आदि अनेक राजा, महाराजाओं, मित्रों सम्बन्धियों और नगर निवासियोंको लव अंकुशसे मिलकर अत्यन्त हर्ष हुआ। बड़े समारोह और गाजे बाजेके साथ उनका अयोध्यामें प्रवेश हुआ।

एक दिन हनुमान, सुग्रीव आदि सबने मिलकर रामचंद्रजी-से विनयपूर्वक निवेदन किया कि महाराज अब सती सीताजी-को बुला लेना चाहिए। रामचन्द्रजीने कहा कि भाई मुझे उस-के शीलमें तनिक भी संदेह नहीं है, पर मैं ने उसे लोकापवादके भयसे निकाली थी, अब कैसे बुलाऊं। कोई उपाय ऐसा करो कि जिससे समस्त विश्वमंडलको उसके शील और पातिव्रत धर्मकी श्रद्धा होजाय। सुग्रीवादिने पुण्डरीकपुरीमें जाकर सीताको सारा वृत्तान्त सुनाया। सीताजीकी आंखोंमें आंसू भर आये वे रोकर अपनी निंदा करने लगीं। हे वत्स सुग्रीव, मेरे अंग दुर्जनोंके वचन रूप दावानलसे दग्ध हो रहे हैं। ये क्षीरसागरके जलसे सींचनेसे भी शीतल न होंगे। तब वे कहने लगे, हे देवि भगवति, सौम्ये, उत्तमे, अब शोकको तजो और धैर्य धारण धरो। इस पृ-थ्वीमें किसकी सामर्थ्य है जो आपके विरुद्ध जिह्वा निकाल सके। हे पतिव्रते! रामचन्द्रजीने तुम्हारे लिये यह पुष्पक विमान भेजा है। अयोध्या तुम्हारे विना शून्य हो रही है। हे पंडिते, तुमको अवश्य पतिका वचन मानना होगा। यह सुनकर सीताजीने उन की बातोंको स्वीकार किया और पुष्पक विमानमें चढ़कर संध्या समय अयोध्या नगरीके महेन्द्र नामक उद्यानमें जा ठहरीं।

अठारहवां परिच्छेद।

अगले दिन सवेरा होते ही निष्पाप हृदय रामकी रमा सती सीता रामकी सभामें आई। सारी सभाने सीताजीको देखकर विनयसंयुक्त वंदना की और सबके मुखसे "माता सदा जयवंत हो, नादो, विरधो, फूलोफलो धन्य यह रूप, धन्य यह धैर्य, धन्य यह सत्य, धन्य यह ज्योति धन्य यह वीरता, धन्य यह गम्भीरता, धन्य यह निर्मलता" आदि शब्द निकलने लगे। जय जयकारसे सारा सभा मंडप गूंज उठा।

सीताजी अपने स्थान पर बैठ गईं। रामचन्द्रजीने उनकी ओर दृष्टि करके कहा—हे देवि! धन्य है तुमको, तुम निष्कलंक और पवित्र हो, मैं ने लोकापवादके भयसे तुमको तजी थी, अब तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे तुम्हारे अखंड शीलका सर्व साधारणको विश्वास हो जाय। सीताजीने कहा, प्राणनाथ! आपने केवल दूसरोंके भयसे मुझे त्यागा, यह अच्छा नहीं किया मेरे मनमें जिन चैत्यालयोंके दर्शनकी वांछा हुई थी, सो आपने यात्राका नाम लेकर विषम वनमें छुड़ा दी। यदि आपके जीमें तजने ही की थी तो मुझे आर्यिकाओंके समीप तजी होती। अब जो आज्ञा करो, सो ही प्रमाण है। आप कहें महाविषकालकूट को पीऊं, अग्निकी ज्वालामें प्रवेश करूं अथवा जो आप आज्ञा करो सो करूं। रामने क्षणिक विचारकर कहा कि अग्निकुण्ड

में प्रवेश करो। सीताने मस्तक नमाकर स्वीकार किया। तब तीन सौ हाथ चौकोर वापिका खोदी गई, जिसमें कालागुरु अगर चन्दन भरा गया और अग्नि जाज्वल्यमान की गई। चारों ओर ज्वाला फैल गई। दशों दिशायें स्वर्णमय हो गई। यह दृश्य बड़ा ही विषम था। सबके हृदय थर थर कांप रहे थे। स्वयं राम अति व्याकुल हो रहे थे। असंख्य नर नारी देख देख कर रो रहे थे। इतनेमें ही सीताजी उठीं और अत्यन्त निश्चल चित्तहो कायोत्सर्ग धार हृदयमें ऋषभादि तीर्थंकर देवोंको विराजमानकर, पंचपरमेष्ठीको स्मरणकर, वीसवें तीर्थंकर हरिवंश-तिलक मुनि सुव्रतनाथ स्वामीका ध्यानकर सर्व जीवोंमें समता धारण कर गम्भीर स्वरसे बोलीं;—

"मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे,
मम यदि पतिभावो राघवादन्यपुंसि।
तदिह दह शरीरं पावके मामकेदम्
सुकृतविकृतनीतेर्देवसाक्षी त्वमेव"

अर्थात् हे उपस्थित महानुभावो! यदि मैं ने रामचन्द्रजीको छोड़कर अन्य पुरुषकी मन वचन कायसे स्वप्नमें भी कामना की हो, तो यह मेरा शरीर इस प्रचंड अग्निमें भस्म हो जाय और यदि मैं सती, पतिव्रता, अणुव्रत धारणी श्राविका हूं, तो हे भगवन् मेरी रक्षा कीजियो। ऐसी प्रतिज्ञा कर नमोकार मंत्र-का उच्चारण करती हुई सती सीता उस प्रचंड दहकते हुए अग्नि कुंडमें निशंक कूद पड़ी। उसके कूदते ही इधर तो दर्शकोंके

होश हवास उड़ गये, राम लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, भामण्डल सुग्रीवादि सब ही हा हा कार करके रोने लगे उधर उस सतीके अखण्ड शीलके प्रभावसे वह अग्निकुंड स्फटिक मणि समान निर्मल जल वापिका हो गई। जलमें कमल फूल गये, कमलों पर भ्रमर गुंजार करने लगे, अग्निका कहीं चिह्न भी न रहा, सारा कुंड जलमय हो गया। जन साधारणको सती सीताके शीलका माहात्म्य दिखलानेके लिए देवने विक्रियासे उस वापिकाका प्रवाह इतना बढ़ा दिया कि दर्शकोंके डूबनेमें कुछ भी सन्देह न रहा। सब चिल्लाने लगे और कहने लगे, हे देवि, हे लक्ष्मि, हे सरस्वती, हे कल्याणरूपिणी, हे धर्मधुरन्धरे, हमारी रक्षा करो, हे माता दया करो, बचाओ बचाओ, प्रसन्न हो। जब सब लोगोंको सीताजीके अखण्ड शीलका परिचय हो गया, तब रक्षक देवने जलकी बढ़ती हुई बाढ़को रोका। तब सबको शान्ति हुई। देवोंने वापिकाके मध्य भागमें सहस्र दलका एक कमल बनाया और कमलकी मध्य कर्णिकापर सिंहासन निर्माण कर उस पर सीताजीको बैठाया और सिंहासनके ऊपर मणिरचित मंडप बनाया। ऊपरसे देवोंने प्रसन्न होकर आकाश मार्गसे रत्न पुष्पादिकी वर्षा की। लव अंकुश अपनी माताको देवोंद्वारा सम्मानित देखकर अति प्रसन्न हुए और उसके दोनों ओर जाकर खडे होगये। रामचन्द्रजी भी ऐसे मुग्ध हुए कि उसके पास जाकर अपने दोषोंकी क्षमा मांगने लगे। हे प्रिये! मेरे अपराध क्षमा करो, मैं लोकापवादके कारण तुमको तज

कर महा अनर्थ किया। आओ, अब एक बार फिर उसी प्रेम बन्धनमें बंधकर सांसारिक सुखोंका रस पान करें। परन्तु जानकी संसारका सारा तत्व भली भांति जान चुकी थी। उसने प्रत्येय अवस्थाका अनुभव कर लिया था। उसने उत्तर दिया, स्वामिन आपका कोई दोष नहीं और न लोगोंका ही दोष है। दोष केवल मेरे अशुभ कर्मोंका है। इन्होंने ही मुझे इस चतुर्गति रूप संसारमें अरहटके समान अनादि कालमें घुमा रक्खा है। मैं ने आपके साथ बहुत काल तक स्वर्ग समान सुख भोगे। अब यह इच्छा है कि जिन दीक्षा धारण करूं, जिसमें स्त्रीत्वका अभाव हो। मैं ने संसारका समस्त सार देख लिया सिवाय दुःख के सुखका लेश भी नहीं है। सुख केवल मोक्षमें है और वह मोक्ष कर्मोंके क्षयसे प्राप्त होता है। अतएव उन कर्मोंके नाश करनेके लिये ध्यानरूपी शस्त्रको धारण करती हूं। यह कह कर शिरके केश उखाड़कर रामचन्द्रजीके सामने फेंक दिये और देव परिवार के साथ जिनेंद्र भगवानके दर्शन करके पृथ्वीमती अर्जिकासे जिन दीक्षा लेली॥

※ सम्पूर्ण ※